Printed and published by Apurva Krishna Bose,
at the Indian Press, Allahabad

भूमिका

हिन्दी-भाषा मे ऐसे उपन्यासो की बडी आवश्यकता है जिन्हें पढ कर स्त्री-पुरुष शिक्षा ग्रहण कर सके। आज तक हिन्दी में जितने उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं उनमें शिक्षा-प्रद कितने हैं? खेद के साथ कहना पडता है कि शिक्षाप्रद उपन्यासो की सख्या हिन्दी में बहुत कम है। प्रचार यदि कुछ हुआ है तो विशेषत उन्हीं उपन्यासो का जिन्हे हम अपने गुरुजनो के निकट मुक्त-कण्ठ से पढ तक नहीं सकते।

बँगला में एक से एक उत्तमोत्तम उपन्यास हैं। यदि उनका अनुवाद हिन्दी मे हो तो समाज-सुधार के साथ ही साथ हिन्दी साहित्य का भी बहुत कुछ उपकार होना सम्भव है।

इडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग के द्वारा अनेक उपयोगी हिन्दी-पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और बराबर प्रकाशित हो रही हैं। इसके लिए समस्त हिन्दी-प्रेमी सज्जनों को, उक्त प्रेस के स्वामी श्रीमान् बाबू चिन्तामणि घोष का, हृदय से कृतज्ञ होना चाहिए। उन्हीं की कृपा से यह राजर्षि हिन्दी में प्रकाशित हो कर हिन्दी-प्रेमियो की सेवा में समर्पित किया जाता है।

बँगला के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम कौन नहीं जानता। उन्हीं की उदार लेखनी से यह

राजर्षि

पहला खण्ड

पहला परिच्छेद

भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर का घाट पत्थर का बना है। वह गोमती नदी के भीतर तक चला गया है। एक दिन सवेरे गरमी के मौसम मे त्रिपुरा के महाराज गोविन्दमाणिक्य स्नान करने आये। उनके साथ उनके भाई नक्षत्रराय भी थे। उसी समय एक छोटी सी लडकी अपने छोटे भाई को साथ लिये उस घाट पर आई। उसने राजा का दुपट्टा पकड कर पूछा—तुम कौन हो ?

राजा ने मुसकुरा कर कहा—मैं तुम्हारा सेवक हूँ।

बालिका ने कहा—मुझे पूजा के लिए फूल तोड दो।

राजा ने कहा—अच्छा, चलो।

राजा के सारे नौकर चकित होकर बोले—महाराज क्यों जायँगे, हम लोग फूल तोडे देते हैं। हम किस लिए हैं ?

राजा ने कहा—इसने मुझसे कहा है, इस कारण मैं ही तोड़ूँगा।

राजा ने उस लडकी के मुँह की ओर ध्यान से देखा
दिन का विमल उषकाल जैसा शोभायमान था वै
शोभायमान उस लडकी का मुँह भी था।

जिस समय वह कुमारिका राजा का हाथ पकडे
के पास फुलवाडी में घूम रही थी उस समय चारो ओर
हुए बेला के स्वच्छ फूलो के सदृश उसके प्रफुल्ल मुँह से
एक प्रकार का सुगन्ध जगल मे फैल रहा था। छोटा
भी अपनी बहन का कपडा हाथ से पकडे उसके साथ सा
रहा था। वह केवल अपनी बहन को ही जानता था। रा
साथ उसका विशेष परिचय नहीं हुआ।

राजा ने उस बालिका से पूछा—तुम्हारा नाम क्या है

बालिका ने कहा—हासी।

राजा ने उस छोटे लडके से भी नाम पूछा। लडका
बडी बडी आँखों को मल कर बहन के मुँह की ओर
लगा। उसने कुछ जवाब न दिया।

हासी ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर कहा—कह
भाई, मेरा नाम ताता है।

लडका अपने छोटे छोटे होठो को खोल कर धी
बोला—"मेला लाम ताता है।" इतना कह कर उसने बह
कपडे को और भी जोर से पकड लिया।

न, इसी से सब लोग इसे ताता कहते हैं। फिर छोटे भाई की ओर देख कर बोली—अच्छा मन्दिर तो कहो।

लड़का बहन की ओर देख कर बोला—लदन्द ।

हासी ने हँस कर कहा—ताता अभी स्पष्ट रूप से मन्दिर नहीं कह सकता, इसी से "लदन्द" कहता है । अच्छा, कलाई तो कहो ।

लड़का ठहर कर बोला—बलाई ।

हासी फिर हँस कर कहने लगी—ताता हम लोगों की तरह कलाई नहीं कह सकता, कहता है—"बलाई" । यह कह कर हासी ने बारबार चुम्मा लेते लेते ताता को चञ्चल कर दिया ।

ताता को बहन की इतनी हँसी और इतने प्यार का कोई कारण ढूँढने पर भी न मिला । वह केवल अपने विशाल नेत्रों को मल कर देखता रहा । यथार्थ में मन्दिर और कलाई शब्द के उच्चारण में ताता ने बिलकुल भूल की, इसे कोई नामंज़ूर नहीं कर सकता । ताता की इतनी उम्र में हासी मन्दिर को लदन्द नहीं कहती थी । वह मन्दिर को पालू कहती थी । कलाई को वह बलाई कहती थी या नहीं, यह मालूम नहीं, किन्तु कौड़ी को घई कहती थी । जो हो, ताता का ऐसा विचित्र उच्चारण सुन कर उसको अधिक हँसी आवेगी, इसमें अब आश्चर्य ही क्या ।

ताता के सम्बन्ध की अनेक घटनायें वह राजा से कहन

लगी। किसी समय एक बूढा आदमी कम्बल ओढे आया था। ताता ने उसे भालू कहा था। ताता की ऐसी अज्ञानता! और एक बार ताता ने शरीफा के फलों को चिडिया समझ कर अपने मोटे मोटे छोटे छोटे हाथों से, ताली बजा कर, उन्हें उडा देने की चेष्टा की थी। हासी की अपेक्षा ताता निरा अबोध बालक है। इस बात को ताता की बहन ने सविस्तर, उदाहरण द्वारा, भली भाँति साबित कर दिया। ताता अपने सम्बन्ध की सभी बातें ध्यान देकर सुन रहा था। जहाँ तक वह समझ सका उसमे मनस्ताप का कोई कारण उसे नहीं मिला। इसी प्रकार उस दिन सवेरे फूल तोडने की विधि समाप्त हुई। राजा ने जब उस छोटी बालिका के आँचल को फूलो से भर दिया तब उन्होंने जाना कि मानो मेरी पूजा परि-पूर्ण हुई। इन्हीं दोनो सरल हृदयों के स्नेह का दृश्य देख कर, इस पवित्र हृदय की आशा पूरी करके और फूलो का संचयन करके, मानो उनके देवपूजन का काम पूरा हुआ।

दूसरा परिच्छेद

एक दिन की थोडी सी देर की मुलाकात से ही उन दोनो भाई-बहनो पर राजा का इतना अधिक प्रेम हो गया था कि वे प्रात काल जब पहले उन दोनो का मुँह देख लेते थे, उनसे मिल लेते थे, तब चारपाई से उठते थे। प्रतिदिन का यह नियम था

कि जब तक उनको फूल तोड कर नहीं देते थे तब तक वे स्नान नहीं करते थे। वे दोनो भी राजा के साथ ऐसे हिल मिल गये थे कि जब तक राजा स्नान किया करते थे तब तक वे भी घाट पर ही बैठे बैठे उनके स्नान का तमाशा देखा करते थे। और, जिस दिन दुर्भाग्यवश राजा को उन दोनो का दर्शन नहीं होता था उस दिन ऐसा मालूम होता था कि आज राजा का नित्य कर्म ही अधूरा रह गया।

हासी और ताता दोनो बे-माँ बाप के थे। उनके केवल एक चचा था। चचा का नाम था केदारेश्वर। उसके भी और कोई बाल-बच्चा न था। बस, यही दोनो बालक उसके अवलम्ब और सुख की सामग्री थे।

एक वर्ष और व्यतीत हो जाने पर ताता, अब, मन्दिर शब्द का उच्चारण ठाक ठीक करने लगा। किन्तु कलाई को अब भी वलाई ही कहता है। कारण यह कि अभी वह अच्छी तरह बोलना नहीं जानता। गोमती नदी के किनारे जब उसकी बहन एक वृक्ष के नीचे पाँव पसार कर बैठती और कोई कहानी कहने लगती तब ताता उसे बडे ध्यान से चाव के साथ सुनता था। उन बे-सिर-पैर की कहानियो को सुन कर न जाने वह क्या समझता था। एक वृक्ष के नीचे खुली हवा में बैठे हुए नन्हें से बालक के कोमल हृदय में कहानी सुन कर कैसे कैसे भाव उदित होते थे, उन्हें हम लोग नहीं जान सकते। ताता मे एक और बडी विचित्र बात थी।

वह यह कि वह किसी और लड़के के साथ नहीं खेलता था। वह सदा अपनी बहन के साथ ही छाया की तरह फिरा करता था।

आषाढ़ का महीना है। सवेरे से आकाश बादलो से घिरा हुआ है। पानी तो अभी नहीं बरसता, किन्तु बरसने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। दूर देश में कहीं अवश्य वर्षा हुई है। नहीं तो हवा मे ऐसी ठडक कहाॅ से आती? गोमती नदी के जल मे और दोनो किनारो के जङ्गल में काले आसमान की छाया पड रही है। कल अमावस थी। इसी से भुवनेश्वरी की पूजा कल हो चुकी।

हासी और ताता के हाथ पकडे हुए राजा नियमित समय पर स्नान करने आये। लोहू की धार बहने की एक लकीर उजले पत्थर के बँधे हुए घाट की सीढियो पर होती हुई गोमती के जल मे जाकर विलीन हो गई है। कल रात में जो एक सौ एक भैंसो का बलिदान हुआ था, उन्हीं का यह लोहू था। हासी ने उस लोहू के दाग को देख कर आश्चर्य्य करके राजा से पूछा—"यह कैसा दाग है?" राजा ने कहा—"यह लोहू का दाग है।" उसने कहा—"इतना लोहू!" इस तरह अधीर सी होकर बालिका ने पूछा—"इतना लोहू क्यों।" राजा के हृदय में भी यही प्रश्न उठने लगा कि वास्तव में "इतना लोहू क्यों?" वे एकाएक कॉंप उठे। बहुत दिनों से वे प्रतिवर्ष लोहू की धार बहते देखते आते हैं सही, किन्तु

आज एक छोटी सी लड़की के मुख से यह प्रश्न सुन कर उनके मन में भी सन्देह होने लगा—"इतना लोहू क्यों ?" वे उत्तर देना भूल गये और अन्यमनस्क होकर स्नान करते करते इसी प्रश्न को सोचने लगे। उन्होंने मन ही मन कहा—गोमती! तू प्रतिवर्ष कई सौ असहाय निरपराधी जीवों का लोहू वहन करती आती है फिर तेरा जल ऐसा स्वच्छ क्यों है ? हासी सीढ़ी पर बैठी बैठी अपने आँचल को पानी से भिगो कर धीरे धीरे लोहू का दाग मिटाने लगी। उसकी देखादेखी ताता भी अपने नन्हे नन्हे हाथों से वैसा ही करने लगा। हासी का वस्त्र बिलकुल लोहू से लाल हो गया। जितनी देर में राजा ने स्नान किया उतनी देर में उन्होंने लोहू के दाग को धोकर साफ कर दिया। वहाँ से लौट कर घर पहुँचते ही हासी को ज्वर हो आया। पास बैठ कर ताता अपनी दो छोटी अँगुलियों से बहन की झँपी हुई आँखों की पलकें खोलने की चेष्टा करके बीच बीच में "बहन बहन" पुकारने लगता है। इस प्रकार पुकारी जाने पर वह चौंक कर कुछ जाग सी उठती है और "ताता क्या है" कह कर उसको अपने पास खींचती है। उसकी आँखें फिर झँप जाती हैं। ताता बड़ी देर तक चुपचाप बहन के मुँह की ओर देखता रहा, कुछ बोला नहीं। आखिर बड़ी देर के बाद धीरे धीरे बहन के गले से लिपट कर उसके मुँह के पास अपना मुँह ले जाकर धीरे से बोला—"बहन तू उठेगी नहीं ?" हासी चौंक कर जाग उठी। उसने ताता को

छाती से लगा कर कहा, "लल्ला, क्यों न उठूँगी"। परन्तु अब उसको उठने का सामर्थ्य कहाँ। ताता के छोटे से हृदय पर मानो अन्धकार छा गया। उसका दिन भर का खेलना-कूदना और आनन्द की आशा बिलकुल ही मिट्टी में मिल गई। आकाश घोर अन्धकार से व्याप्त हो गया। घर के छप्पर पर कुछ कुछ पानी पड़ने का शब्द सुनाई देने लगा। वह देखो, सामने इमली का पेड भीग गया। रास्ते मे कोई राहगीर नहीं देख पडता। केदारेश्वर एक वैद्य को अपने साथ लाये हैं। वैद्य ने नाडी देखी तो उनको लक्षण अच्छा नहीं जान पडा।

उसके दूसरे दिन स्नान करने के लिए आकर राजा ने देखा, आज मेरी इन्तजार मे वे दोनो भाई-बहन मन्दिर मे नहीं हैं। मन मे सोचा कि इस भयङ्कर बदलो के सबब वे दोनो नहीं आ सके। स्नान, तर्पण समाप्त करके राजा पालकी पर आरूढ हुए। उन्होने कहारो को केदारेश्वर के घर की ओर ले चलने की आज्ञा दी। नौकरों को यह सुन कर बडा ही आश्चर्य हुआ। किन्तु राजा की आज्ञा पर कोई कुछ बोल न सका। राजा की सवारी जब केदारेश्वर के आँगन मे जा पहुँची तब उसके घर मे बडी ही धूम मची।

उस गोलमाल मे रोगी की बीमारी की किसी को खबर ही न रही। केवल ताता वहाँ से नहीं हटा। वह अपनी बेहोश बहन की गोद के पास ही, उसके कपडे का एक छोर मुँह मे दबाये, चुपचाप बैठा रहा। राजा को घर मे आते देख कर

ताता ने पूछा—"क्या हुआ है ?" हृदय उद्विग्न होने के कारण राजा ने कुछ भी उत्तर न दिया। ताता ने फिर गर्दन झुला झुला कर पूछा—"क्या बहन को चोट लग गई है ?" उसके चचा केदारेश्वर ने कुछ रुष्ट होकर कहा—"हाँ चोट लगी है।" ताता ने अब बहन की गोद के पास जाकर उसके मुँह को उठाने की चेष्टा करते हुए गले से लिपट कर पूछा, "बहन, तुम्हे किस जगह चोट लगी है ?" इस प्रश्न का अभिप्राय उसके मन मे यही था कि जिस जगह चोट लगी है उस जगह मुँह से फूँक कर और हाथ फेर कर बहन के समस्त कष्ट को दूर कर दे, लेकिन बहन ने जब कोई उत्तर न दिया तब उससे और सहा नहीं गया। उसके दोनो छोटे छोटे हाठ उत्तरोत्तर फूलने लगे। जब उससे न रहा गया तब वह रोकर बोला—"कल्न छे मैं बैठा हूँ, कुन्छ बोलती क्यो नहीं ? मैंने क्या बिगाला है। जो मेले ऊपल इतनी खपा होती हो।" राजा के सामने ताता का यह व्यवहार देख कर केदारेश्वर बडे ही व्यग्र हुए और क्रोध के साथ उसका हाथ पकड कर उसे दूसरे कमरे मे उठा ले गये। तब भी हासी कुछ न बोली।

राजवैद्य बीमारी बिगड जाने की बात पहले ही आकर कह गये थे। राजा स्वय उस लडकी के सिरहाने बैठ गये। शाम होने पर लडकी बकने लगी—"हाय हाय! इतना लोहू क्यों ?" राजा ने कहा—"मैं, इस रक्तप्रवाह को दूर करूँगा।" बालिका

फिर बोली—"आओ भाई ताता, हम तुम दोनों मिल कर इस लोहू को मिटा डालें।" शाम होने के कुछ ही देर बाद हासी ने एक बार आँखें खोली थीं। आँखें खोल कर उसने एक बार चारों ओर इस तरह देखा मानों वह किसी को ढूँढ रही है। उस समय ताता दूसरे कमरे में रोते रोते सो गया था। जब हासी को कोई देख न पड़ा तब उसने आँखें बन्द कर लीं।

बस, उस समय जो आँखें बन्द हुईं सो फिर कभी नहीं खुलीं। उसी दिन आधी रात के समय राजा की गोद में पड़ी हुई हासी का प्राण-पखेरू उड़ गया। जिस समय लोग सदा के लिए हासी को घर से बाहर ले गये थे उस समय ताता नींद में अचेत पड़ा था। यदि ताता उस समय जागता होता तो वह अपनी बहन के पीछे छाया की तरह अवश्य चला जाता।

तीसरा परिच्छेद

राजा-सभा में बैठे हैं। भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर का पुरोहित (पुजारी) किसी कार्यवश उनके पास आया है। पुरोहित का नाम रघुपति है। इस देश में पुरोहित को लोग चोन्ताई कहते हैं। भुवनेश्वरी देवी की पूजा होने के चौदह दिन बाद निःशब्द रात्रि में चौदह देवताओं की एक और पूजा होती है। इस पूजा के समय रात में कोई घर के बाहर नहीं निकल सकता। राजा भी नहीं निकल सकते। यदि राजा घर के बाहर जायँ तो

इन्हें पुरोहित के निकट अर्थदण्ड (जुर्माना) देना पड़े। किवदन्ती है कि उस पूजा की रात मे नरबलि होती है। उस पूजा के उपलक्ष मे सबसे पहले जिन पशुओ का बलिदान होता है वे राजा से राजभवन सम्बन्धी दान के रूप मे लिये जाते हैं। पुरोहित बलिदान के लिए राजा के पास पशु लेने आया है। पूजा के अब बारह दिन रह गये हैं।

राजा ने कहा—"इस साल से मन्दिर मे जीव-हिंसा न होगी"। यह सुन कर सब लोग अवाक् रह गये।

पुरोहित रघुपति ने कहा—क्या मैं यह स्वप्न देखता हूँ।

राजा बोले—नहीं महाशय, अब तक हम लोग स्वप्न देखते थे। अब हमारी आँखे खुलीं हैं। एक बालिका का स्वरूप धारण करके भगवती ने मुझको दर्शन दिया है। वह कह गई है कि मैं दयामयी जगन्माता हूँ। मैं अब अपने जीवो का रक्तपात नहीं देख सकती।

रघुपति ने कहा—तब इतने दिनो से देवी क्यो जीवो का रक्तपान करती थी?

राजा ने कहा—नहीं, वह पान नहीं करती। तुम लोग जीवो को मार कर जब लोहू बहाते हो तब वह मुँह फेर लेती है।

रघुपति बोला—महाराज, आप राज-काज को अच्छी तरह समझते हैं, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु पूजा की बात आप कुछ भी नहीं जानते। इस विषय में यदि भगवती को कुछ अप्रसन्नता

होती तो मैं ही पहले इस बात को जानता । नक्षत्रराय बडे ज्ञानी की तरह सिर हिला कर बोले--हाँ, यह बात ठीक है। देवी की यदि कुछ अप्रसन्नता होती तो पहले पुरोहित महाशय को ही यह बात विदित होती।

राजा--जिसका हृदय कठोर हो गया है वह देवी की बात नहीं सुन सकता।

नक्षत्रराय ने पुरोहित के मुँह की ओर देखा। उसका मतलब यही है कि इस बात का जवाब कुछ जरूर देना चाहिए।

रघुपति मारे क्रोध के आग-बबूला होकर बोल उठा—आप तो भ्रष्टाचारी नास्तिक की तरह बातें कर रहे हैं।

गोविन्दमाणिक्य, क्रोधाग्नि से प्रज्वलित पुरोहित के मुँह की ओर देख कर बोले—महाशय, राजसभा मे बैठ कर आप अपने समय को वृथा नष्ट कर रहे हैं। आप मन्दिर में जाकर अपना काम कीजिए। जाते समय रास्ते मे इस बात का प्रचार कर दीजिएगा कि मेरे राज्य मे जो कोई देवता के निकट जीव-बलि देगा उसको निर्वासन दण्ड होगा—उसको देश-निकाले की सजा मिलेगी।

तब रघुपति काँपते काँपते उठ खडा हुआ और यज्ञोपवीत को छूकर बोला, "जाओ, अब तुम्हारा नाश हो"। पुरोहित को शाप देते सुन चारो तरफ से हा! हा! करते हुए सभासद् गण उस पर टूट पडे। राजा ने सङ्केत से सबको मना किया। सब लोग अलग जा खडे हुए। रघुपति कहने लगा—तुम राजा

हो, तुम इच्छा करो तो प्रजा का सर्वस्व हरण कर सकते हो। इसी से क्या भगवती का बलि भी हरण कर लोगे ? तुम्हारा सामर्थ्य क्या है ? देवी के सेवक रघुपति के रहते किस प्रकार तुम पूजा में विघ्न करते हो, मैं भी तो देखूँगा।

मन्त्री (दीवान) राजा के स्वभाव से भली भाँति परिचित थे। वे जानते थे कि किसी बात का सङ्कल्प कर लेने पर राजा उसको जरूर पूरा करते हैं। उन्होंने धीरे धीरे दरबार में कहा—"महाराज, आपके स्वर्गीय पूर्व-पुरुष देवी के आगे नियमित रूप से बराबर बलि देते आये हैं। इसमें एक बार भी कभी अन्यथा नहीं हुआ"। इतना कह कर वे चुप हो गये।

राजा कुछ नहीं बोले। मन्त्री ने कहा—आज इतने दिनों के बाद आपके पूर्व-पुरुषों के द्वारा संस्थापित इस प्राचीन पूजा में बाधा होने से स्वर्ग में वे पितर लोग अप्रसन्न होंगे।

महाराज सोचने लगे। नक्षत्रराय अपनी पण्डिताई बघारते हुए बोले—हाँ, स्वर्ग में वे पितर अप्रसन्न होंगे।

मन्त्री ने फिर कहा—महाराज एक काम करें, जहाँ हजार बलिदान होता है वहाँ अब एक ही सौ बलि की आज्ञा दी जाय।

सभासद्गण वज्राहत की तरह अवाक् हो रहे। गोविन्द-माणिक्य भी बैठ कर इस बात को विचारने लगे। रुष्ट रघुपति अधीर होकर दरबार से जाने लगा।

उसी समय द्वारपालों के हाथ से किसी प्रकार बच कर नङ्ग धड़ङ्ग, एक छोटा सा लड़का दरबार में आया। उसके बदन

पर न कोई कपडा था, न पैरो मे जूता । राज-दरबार के बीच में खडा होकर, अपनी बडी बडी आँखो से राजा के मुँह की ओर देख कर, वह लडका कहने लगा—बहन कहाँ है ?

उस बडे दरबार के सभी लोगो के ऊपर मानो सन्नाटा छा गया। केवल एक छोटे लडके की कण्ठध्वनि उस विशाल सभा-भवन में प्रतिध्वनित हो उठी—बहन कहाँ है ?

राजा ने तुरन्त सिहासन से नीचे उतर कर लडके को गोद मे उठा लिया । फिर उन्होंने उच्च स्वर से मन्त्री से कहा—आज से मेरे राज्य में बलिदान नही हो सकेगा । इस पर अब कुछ न बोलो ।

मन्त्री ने कहा—जो आपकी आज्ञा ।

ताता ने राजा से फिर पूछा—मेरी बहन कहाँ है ?

राजा ने कहा—देवी के पास ।

ताता बडी देर तक मुँह में उँगली डाले चुपचाप खडा रहा । उस समय उसको ऐसा मालूम हुआ मानो उसे अपनी बहन का सच्चा पता मिल गया । उस दिन से राजा ने ताता को अपने ही पास रख लिया और उसके वृद्ध चचा केदारेश्वर को भी वहीं महल में रहने की जगह दे दी ।

सभासद् लोग आपस मे यो वाद-विवाद करने लगे—भाई, यह तो मग का मुल्क हो गया । हम लोग तो जानते हैं कि बौद्ध और मग जाति के ही लोग रक्त-पात नहीं करते । क्या अब हमारी हिन्दू-जाति के देश मे भी वही रीति जारी होगी ?

नक्षत्रराय भी उन्हीं लोगों की राय में राय मिला कर बोले—हाँ, हिन्दुओं के देश में भी क्या यही रीति जारी होगी ?

सब लोगों ने निश्चय किया कि अवनति का लक्षण इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ? मग जाति और हिन्दुओं मे अब क्या फर्क रह गया।

चौथा परिच्छेद

भुवनेश्वरी-मन्दिर के नौकर का नाम जयसिंह है। वे जाति के राजवंशी क्षत्रिय हैं। उनके बाप सुचेतसिंह त्रिपुरा राजधानी में एक पुराने नौकर थे। सुचेतसिंह की मृत्यु के समय जयसिंह निरे बालक थे। उस असहाय बालक को राजा ने मन्दिर के काम में भरती किया था। मन्दिर के पुजारी रघुपति ने ही जयसिंह का पालन कर शिक्षा दी है। लड़कपन से ही मन्दिर में रक्षित होने के कारण जयसिंह मन्दिर को अपना घर मानते थे। मन्दिर की कोई जगह ऐसी न थी जिसे वे न जानते हों, अर्थात् मन्दिर के सभी गुप्त और प्रकट स्थानों से वे भली भाँति परिचित थे। उनकी माँ जीती न थी। भुवनेश्वरी की प्रतिमा ही को वे माँ करके मानते थे। प्रतिमा के सामने बैठ कर वे बातें किया करते थे। उन्होंने कभी अपने को अकेला नहीं समझा। उनके और भी कितने ही साथी थे।

रघुपति—तुम्हारे लिए भगवती की आज्ञा है । पहले भगवती को प्रणाम करने चलो ।

दोनो मन्दिर में गये । जयसिंह भी उनके साथ साथ गये । नक्षत्रराय ने भुवनेश्वरी की मूर्त्ति के सम्मुख साष्टाङ्ग प्रणाम किया । रघुपति ने नक्षत्रराय से कहा—कुमार, तुम राजा बनोगे ।

नक्षत्रराय ने कहा—क्या कहा महाराज, मैं राजा बनूँगा ? आप जो कहते हैं उसका कुछ निश्चय नहीं । यह कह कर नक्षत्रराय खूब जोर से हँसने लगे ।

रघुपति—मैं कहता हूँ, तुम जरूर राजा बनोगे ।

आप कह रहे हैं, मैं जरूर राजा बनूँगा । यह कह कर नक्षत्रराय रघुपति के मुँह की ओर देखने लगे ।

रघुपति—तो क्या मैं तुमसे झूठ कह रहा हूँ ?

नक्षत्रराय—आप झूठ तो नहीं कहते, पर यह बात होगी क्योंकर ? देखिए महाशय, कल मैंने मेंडक का सपना देखा है । अच्छा, सपने में मेंडक देखने से क्या होता है ?

रघुपति ने हँसी रोक कर कहा—कैसा मेंडक देखा ? उसके सिर पर चिह्न था न ?

नक्षत्रराय जोर देकर बोले—हाँ, उसके सिर पर चिह्न तो था ।

रघुपति—हाँ, तब तो राज का टीका तुमको जरूर मिलेगा ।

नक्षत्रराय—तो राज का टीका मुझको मिलेगा। आप कह रहे हैं न ? मुझको राज्य मिलेगा। और, यदि न मिले तो ?

रघुपति—क्या मेरी बात झूठी हो जायगी ?

नक्षत्रराय—नहीं, नहीं, मैं यह बात नहीं कहता। मुझको राजतिलक प्राप्त होगा, यह तो आप कह ही रहे हैं। किन्तु मान लीजिए, यदि न हो। क्या दैववश ऐसा नहीं हो सकता कि ...

रघुपति बात काट कर बोले—नहीं, नहीं, यह बात अन्यथा नहीं हो सकती।

नक्षत्रराय—जब आप ऐसा कहते हैं तब यह निःसन्देह अन्यथा नहीं हो सकती। अच्छा, राजा हो जाने पर मैं आपको अपना मन्त्री बनाऊँगा।

रघुपति—मैं मन्त्री होना नहीं चाहता।

नक्षत्रराय बड़ी उदारता के साथ बोले—अच्छा, तब राजसिंह को ही मन्त्री बनाऊँगा।

रघुपति—यह बात देखी जायगी। राजा होने के पहले क्या करना होगा, सो तो पहले सुन लो। देवी राजरक्त देखना चाहती हैं। स्वप्न में उन्होंने मुझे यही आज्ञा दी है।

नक्षत्रराय—देवी राजरक्त देखना चाहती हैं। स्वप्न में आपको यही आदेश हुआ है। यह तो अच्छी बात है।

रघुपति—आपको गोविन्दमाणिक्य का लोहू लाना होगा।

नक्षत्रराय किसी तरह "हाँ" करके रह गये। पहले तो

उन्होंने कह दिया "अच्छी बात है," पर अब वह बात मन में उतनी अच्छी न लगी ।

रघुपति ने कुछ घुडक कर कहा—क्या तुम्हारे मन में एकाएक भ्रातृस्नेह का उदय हो आया ?

नक्षत्रराय ने ऊपरी मन से हँस कर कहा—"अहा हा, भ्रातृस्नेह ! आपने तो खूब कहा । वाह रे भ्रातृस्नेह ! ऐसी हँसी की बात और क्या होगी । भ्रातृस्नेह ! क्या ही शरम की बात आपने कही ।" किन्तु अन्तर्यामी भगवान् जानते हैं कि नक्षत्रराय के हृदय में भ्रातृस्नेह जाग रहा है । उसको वे हँस कर नहीं उडा सकते ।

रघुपति—इस (भ्रातृस्नेह) के होने पर फिर क्या करोगे, बोलो ।

नक्षत्रराय—मैं क्या करूँगा, यह आप ही कहिए ।

रघुपति—अच्छी तरह इस बात को सुनो; गोविन्दमाणिक्य का लोहू देवी के दर्शनार्थ तुमको लाना होगा ।

नक्षत्रराय मन्त्रोच्चारण की तरह कह गये—गोविन्दमाणिक्य का लोहू देवी के दर्शनार्थ लाना होगा ।

रघुपति ने बडे अनादर के साथ कहा—नहीं, तुमसे कुछ नहीं हो सकेगा ।

नक्षत्रराय—क्यों नहीं होगा । जो आप कहिएगा वही होगा । आप आज्ञा देते हैं न ?

रघुपति—हाँ, मैं आज्ञा देता हूँ ।

नक्षत्रराय—क्या आज्ञा देते हैं ?

रघुपति रुष्ट होकर बोला—देवी को राजा का रक्त देखने की इच्छा है, इसलिए तुमको गोविन्दमाणिक्य का लोहू दिखला कर देवी की इच्छा पूरी करनी होगी। यही देवी की आज्ञा है।

नक्षत्रराय—मैं आज अभी जाकर फतेहखाँ को इस काम के लिए तैनात करूँगा।

रघुपति—नहीं, नहीं, इस विषय की रत्ती भर भी खबर किसी और को न मिलने पावे। मैं तुम्हारी मदद के लिए जयसिंह को नियुक्त करूँगा। कल सवेरे आना। उसी समय मैं काम बनने का उपाय बतलाऊँगा।

नक्षत्रराय रघुपति के पजे से निकल कर वहाँ से तुरन्त चले गये।

छठा परिच्छेद

जब नक्षत्रराय चले गये तब जयसिंह ने कहा—गुरुदेव, ऐसी भयानक बात मैंने कभी नहीं सुनी। आपने जगदम्बा के सामने, जगदम्बा ही का नाम लेकर, भाई के हाथ से भ्रातृवध का प्रस्ताव किया और मुझको खड़ा होकर वही सुनना पड़ा।

रघुपति—इसके अलावा और उपाय ही क्या है ? तुम्हीं कहो।

जयसिंह—उपाय ! कैसा उपाय ?

रघुपति—देखता हूँ, तुम भी दूसरे नक्षत्रराय हो। इतनी देर तक तुमने वहाँ क्या सुना ?

जयसिंह—जो कुछ सुना वह सुनने योग्य न था। उसके सुनने में पाप है।

रघुपति— पाप-पुण्य की बात तुम क्या समझो !

जयसिंह—इतने दिन आपके पास शिक्षा पाई है। क्या अब भी मैं पाप-पुण्य की बात कुछ नहीं समझता ?

रघुपति—सुनो बेटा, अब तुमको एक और उपदेश देता हूँ। पाप-पुण्य कुछ नहीं है। किसका कौन बाप, किसका कौन भाई ? किसी का कोई नहीं। हिंसा यदि पाप है तो सभी हिंसा बराबर हैं। किन्तु कौन कहता है कि हिंसा पाप है। कितने ही चींटी आदि छोटे जीवों को हम लोग प्रतिदिन पाँव तले मसल कर मार डालते हैं। तो क्या हम लोग उनकी अपेक्षा इतने बडे हैं कि उनकी जान को कुछ न समझें ! हत्या तो प्रतिदिन होती है। कोई सिर पर पत्थर का टुकडा गिर जाने से, कोई बाढ के पानी में बह कर, और कोई महामारी (हैजा) के मुँह में पड कर मरते हैं। कोई मनुष्य की छुरी के आघात से मरते हैं। इन सब तुच्छ जीवधारियों का जीवन-मरण कुतूहल के अतिरिक्त और क्या है ? काल-रूपिणी महामाया के निकट ऐसे असंख्य प्राणियों का बलिदान प्रतिदिन हो रहा है। संसार के चारों ओर से जीवों की

रक्तधारा उसके विशाल खप्पर में आकर गिरती है। मैंने यदि उस धारा मे रक्त की एक और बूँद मिला दी तो क्या अनुचित किया ? किसी न किसी समय तो अपनी बलि को वह लेती ही है। मैं तो उसके बीच एक निमित्त-मात्र हुआ हूँ।

तब जयसिंह प्रतिमा की ओर देख कर कहने लगे—क्या इसी लिए सब लोग तुमको माँ कह कर पुकारते हैं। हाय, तुम्हारा हृदय ऐसा कठोर है। तुमने तो राक्षसियों को भी मात कर दिया। क्या सारे संसार का लोहू निचोड कर पेट भरने ही के लिए तुम अपनी चञ्चल जीभ को बाहर निकाले रहती हो ? तुमने तो स्नेह, प्रेम,ममता, सौन्दर्य्य और धर्म सभी पर पानी फेर दिया। तुम्हे तो बस बेहद लोहू की प्यास मिटानी है। तुम्हारा ही पेट भरने के लिए मनुष्य मनुष्य के गले पर छुरी फेरेगा, भाई भाई का खून करेगा, बाप बेटे परस्पर मार-काट करेंगे। निष्ठुरे, सचमुच यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मेघ पानी के बदले लोहू क्यों नहीं बरसाता ? जीवन-प्रदात्री दयारूपिणी नदी रक्त का प्रवाह लेकर समुद्र में क्यों नहीं प्रवेश करती ? तब इस संसार मे एक मात्र हिंसा, विद्वेष, महामारी और विभीषिका का साम्राज्य क्यों नहीं हुआ ? नहीं, नहीं, माँ। तुम प्रत्यक्ष होकर जवाब दो, यह उपदेश मिथ्या है। यह शास्त्र असत्य है। मेरी माँ को माँ न कह कर लोग सन्तान का शोणित पीनेवाली राक्षसी कहें—यह बात मुझसे नहीं सही जायगी—इतना कहते कहते जयसिंह

की दोनों आँखों से आँसू टपकने लगे। वे अपनी बातों को आपही विचारने लगे। इतनी बातें इसके पहले उनके हृदय में कभी न उठी थीं। यदि रघुपति उन्हें नवीन शास्त्र का अपूर्व उपदेश देने न आता तो ये सब बातें उनके हृदय में कभी न उठतीं।

रघुपति मुसकरा कर बोला—"तब तो बलिदान के सम्बन्ध की सभी बातें एक-दम उठा देनी चाहिए।

जयसिंह अपने बचपन से बराबर बलिदान देखते आते हैं। इस कारण, मन्दिर में बलिदान क्या किसी समय बन्द हो सकता है अथवा उसका बन्द होना ठीक है, इन बातों पर उनका मन कुछ भी नहीं लगता। यहाँ तक कि इन बातों का ख़याल आने के साथ उनके हृदय में चोट लगती थी। इसी से जयसिंह ने रघुपति की बात का जवाब दिया—वह बात अलग है। उसका अभिप्राय ही कुछ और है। ... कोई बात नहीं। किन्तु उसके ... आई ...

मान लीजिए कि मेरा विश्वास आपके ऊपर शिथिल नहीं हुआ है। किन्तु नक्षत्रराय का भी जन्म तो राजकुल मे ही है।

रघुपति ने कहा—देवताओ का स्वप्न मे इशारा-मात्र होता है। सब बातें सुनी नहीं जातीं। बहुत बातें अनुभव के द्वारा ही समझी जाती हैं। यह बात तो प्रत्यक्ष देखी जा रही है कि गोविन्दमाणिक्य के ऊपर देवी नाराज हुई है। नाराज होने का कारण भी तो है। अतएव जब देवी ने राज-रक्त की इच्छा प्रकट की है तब यही समझना होगा कि गोविन्दमाणिक्य ही का रक्त वे चाहती हैं।

जयसिंह—यदि यह सत्य है तो मैं ही राज-रक्त लाऊँगा। नक्षत्रराय को पाप मे लिप्त न होने दूँगा।

रघुपति—देवी की आज्ञा का पालन करने मे कोई पाप नहीं। जयसिंह—पाप नहीं तो पुण्य जरूर है। उस पुण्य को मैं ही लूटूँगा।

रघुपति—तो सत्य करके कहो। देखो बेटा, मैंने तुमको बचपन से ही बड़ी हिफाजत के साथ प्राण से भी अधिक प्यार करके पाला पोसा है। मैं तुमको खो न सकूँगा। गोविन्दमाणिक्य को मार कर नक्षत्रराय यदि राजा हुए तो उसमें कोई चूँ तक भी न करेगा। परन्तु तुम यदि राजा के ऊपर हाथ चलाओगे तो फिर तुम मुझे न मिलोगे।

जयसिंह—मुझ पर इतना स्नेह ! मैं तो एक तुच्छ आदमी हूँ। मेरे स्नेह का खयाल कर तुम चींटी तक की भी कोई हानि

की दोनों आँखों से आँसू टपकने लगे। वे अपनी बातों को आपही विचारने लगे। इतनी बाते इसके पहले उनके हृदय में कभी न उठी थीं। यदि रघुपति उन्हे नवीन शास्त्र का अपूर्व उपदेश देने न आता तो ये सब बातें उनके हृदय में कभी न उठतीं।

रघुपति मुसकरा कर बोला—"तब तो बलिदान के सम्बन्ध की सभी बाते एक-दम उठा देनी चाहिए।

जयसिंह अपने बचपन से बराबर बलिदान देखते आते हैं। इस कारण, मन्दिर मे बलिदान क्या किसी समय बन्द हो सकता है अथवा उसका बन्द होना ठीक है, इन बातों पर उनका मन कुछ भी नहीं लगता। यहाँ तक कि इन बातो का खयाल आने के साथ उनके हृदय मे चोट लगती थी। इसी से जयसिंह ने रघुपति की बात का जवाब दिया—वह बात अलग है। उसका अभिप्राय ही कुछ और है। उसमे कोई पाप नहीं। किन्तु उसके निमित्त भाई भाई का खून करेगा। उसी के लिए महाराज गोविन्दमाणिक्य को गुरुदेव, मैं आपके पाँव पकड कर प्रार्थना करता हूँ। मुझको बहकाइए मत। क्या सचमुच देवी ने स्वप्न मे ऐसा कहा है? राजा का रक्त न पाने से क्या उसकी तृप्ति न होगी?

रघुपति जरा ठहर कर बोला—सचमुच नहीं तो क्या मैं झूठ कहता हूँ? मेरे ऊपर क्या तुम्हारा विश्वास नहीं है?

जयसिंह रघुपति के पैरों की धूल माथे में लगा कर बोले—

मान लीजिए कि मेरा विश्वास आपके ऊपर शिथिल नहीं हुआ है। किन्तु नक्षत्रराय का भी जन्म तो राजकुल में ही है।

रघुपति ने कहा—देवताओं का स्वप्न में इशारा-मात्र होता है। सब बातें सुनी नहीं जातीं। बहुत बातें अनुभव के द्वारा ही समझी जाती हैं। यह बात तो प्रत्यक्ष देखी जा रही है कि गोविन्दमाणिक्य के ऊपर देवी नाराज हुई हैं। नाराज होने का कारण भी तो है। अतएव जब देवी ने राज-रक्त की इच्छा प्रकट की है तब यही समझना होगा कि गोविन्दमाणिक्य ही का रक्त वे चाहती हैं।

जयसिंह—यदि यह सत्य है तो मैं ही राज-रक्त लाऊँगा। नक्षत्रराय को पाप में लिप्त न होने दूँगा।

रघुपति—देवी की आज्ञा का पालन करने में कोई पाप नहीं। जयसिंह—पाप नहीं तो पुण्य जरूर है। उस पुण्य को मैं ही लूटूँगा।

रघुपति—तो सत्य करके कहो। देखो बेटा, मैंने तुमको बचपन से ही बड़ी हिफाजत के साथ प्राण से भी अधिक प्यार करके पाला-पोसा है। मैं तुमको खो न सकूँगा। गोविन्दमाणिक्य को मार कर नक्षत्रराय यदि राजा हुए तो उसमें कोई चूँ तक भी न करेगा। परन्तु तुम यदि राजा के ऊपर हाथ चलाओगे तो फिर तुम मुझे न मिलोगे।

जयसिंह—मुझ पर इतना स्नेह! मैं तो एक तुच्छ आदमी हूँ। मेरे स्नेह का खयाल कर तुम चींटी तक की भी कोई हानि

नहीं कर सकते । ऐसी दशा मे मेरे ऊपर स्नेह करके यदि तुम पाप मे सनो तो तुम्हारे उस स्नेह का उपभोग मैं अधिक दिन तक न कर सकूँगा । उस स्नेह का परिणाम कभी अच्छा न होगा ।

रघुपति झट बोल उठा—अच्छा, वह बात फिर होगी । कल नक्षत्रराय के आने पर किसी एक बात का निश्चय हो जायगा ।

जयसिंह ने मन ही मन प्रतिज्ञा कर ली—राज-रक्त मैं ही लाऊँगा । देवी के सन्तोषार्थ अथवा गुरुदेव के प्रसन्नतार्थ भाई के हाथ से भाई का वध तो कदापि न होने दूँगा ।

सातवाँ परिच्छेद

जयसिंह को सारी रात नींद न आई । गुरु (रघुपति) के साथ जिस बात पर तर्क-वितर्क हुआ था उसकी अब शाखा-प्रशाखायें जयसिंह के मन मे फैलने लगीं । किसी काम को शुरू करने के लिए समय का अधिक भाग हम लोगो के हाथ में अवश्य है किन्तु उस काम का पूरा होना हम लोगो के वश मे नहीं । चिन्ता के सम्बन्ध में भी यही बात घटती है । जयसिंह के मन मे बडे वेग से इस प्रकार एक एक करके सभी बाते उठने लगीं । वे बातें उनके चिरकाल से जमे हुए विश्वास के मूल मे कुठारा-घात करने लगीं । जयसिंह बडे ही

दु खी और खिन्न होने लगे। परन्तु उनका दु ख किसी प्रकार भी दूर न हुआ। जिस काली को जयसिंह इतने दिन से माँ समझते थे उस मातृत्वभाव को गुरुदेव ने क्यों दूर कर दिया। उनको निर्दया क्यो बतलाया। शक्ति की प्रसन्नता ही क्या, और अप्रसन्नता ही क्या। प्रकृति के न कान हैं, न आँखे। प्रकृति (शक्ति) तो एक बडे भारी रथ के सदृश है, जो अपने असख्य पहियो के नीचे ससार को घसीट कर घर्घर शब्द करती हुई बराबर चली जा रही है। उसका सहारा पाकर कौन चला जा रहा है, उसके नीचे दब कर कौन पिस गया, उसके ऊपर आरूढ होकर कौन उत्सव मना रहा है और उसके नीचे पड कर कौन चिल्ला रहा है—ये बाते उसे क्या मालूम ? क्या उस प्रकृति रथ का कोई हाँकनेवाला नही ? ससार के निरपराधी, असहाय और भयभीत प्राणियो का रक्तपान कर कालरूपिणी निष्ठुर शक्ति देवी की तृष्णा का निवारण करना ही क्या मेरा काम है ? क्यो ? वह तो आप ही अपने काम को कर रही है। उसके पास दुर्भिक्ष है, बाढ है, भूकम्प है, जरावस्था है, महामारी है, अग्निदाह है और निर्दय लोगो के हृदय में हिंसात्मिका बुद्धि है। एतदर्थ मुझ क्षुद्र जीव की जरूरत ही उसे क्या है ?

उसके दूसरे दिन का प्रात काल बडा ही सुहावना हुआ। वर्षा बन्द हो चुकी है। पूर्व दिशा में मेघ नहीं है। सूर्य की किरणे मानों जल से धुल कर और भी साफ हो गई हैं।

वृष्टि के जल और सूर्य्य की किरणों से दसों दिशायें चमचमा रही हैं। सूर्य्य की स्वच्छ आनन्दप्रभा आकाश मे, निराले मैदान मे, वन में और नदी के प्रवाह में प्रफुल्ल श्वेत सहस्र दल कमल की तरह प्रस्फुटित हो उठी है। नीले आसमान में चीलें इधर उधर चक्कर लगा रही हैं। इन्द्र-धनुष के नीचे कतारबन्दी के साथ बगले उड रहे हैं। गिलहरियाँ एक पेड से दूसरे पर दौड रही हैं। दो-एक खरगोश एक झाडी के भीतर से निकल कर बडी भीरुता के साथ चकित हो कर छिपने के लिए फिर कोई आड खोज रहे हैं। बकरी के छोटे छोटे बच्चे एक दुर्गम पहाड पर चढ कर घास की कोमल पत्तियाँ नोच नोच कर खा रहे हैं। गाय बैल आज बडी खुशी मे मगन होकर मैदान में चर रहे हैं। चरवाहे गा रहे हैं। बगल मे घडा लेकर जाती हुई माँ के आँचल का छोर पकडे बालक भी आज बाहर निकले हैं। वृद्ध मनुष्य पूजा के लिए फूल तोड रहे हैं। नदी मे स्नान करने के लिए आज बहुत से लोग एकत्र हुए हैं। वे सब परस्पर बातचीत कर रहे हैं। इधर नदी का भी कलकल शब्द बन्द नहीं है। आषाढ महीने में एक दिन अनन्त जीवों को धारण करनेवाली इस आनन्दमयी पृथ्वी की ओर निहार कर जयसिंह ने एक लम्बी साँस ली और मन्दिर में प्रवेश किया।

जयसिंह मूर्त्ति की ओर देख और हाथ जोड कर बोले—क्यों माँ, आज इस प्रकार नाराज क्यों? यदि एक दिन अपने

जीव का रक्त सामने नहीं आया तो उसी से क्या ऐसी टेढ़ी भौंह! हमारे हृदय मे प्रवेश करके अच्छी तरह देखो। क्या भक्ति की कुछ त्रुटि देखने में आती है? भक्तों का हृदय ग्रहण करके ही क्या तुम्हें सन्तोष नहीं होता जो निरपराधियों का रक्त चाहती हो? अच्छा माँ सच सच कहो। धर्म के अवतार गोविन्दमाणिक्य को ससार मे अलग करके इस देश में राक्षस का राजत्व स्थापन करना ही क्या तुम्हे अभीष्ट है? तुमको राज रक्त जरूर चाहिए? तुम्हारे श्रीमुख से उत्तर बिना पाये मैं राज हत्या कभी न होने दूँगा और इस काम में बाधा डालूँगा। हाँ या ना, एक बात बोलो।

एकाएक उस जन-शून्य मन्दिर मे शब्द हुआ—"हाँ।" जयसिंह ने चौंक कर पीछे घूम कर देखा, कोई दिखाई नहीं दिया। किन्तु ऐसा जान पड़ा जैसे किसी की छाया काँपती हुई निकल गई हो। आवाज सुन कर पहले उन्होंने समझा कि जैसे वह उनके गुरु की आवाज है। फिर उन्होंने मन मे समझा कि देवी ने मेरे गुरु के कण्ठस्वर के द्वारा ही आज्ञा दी है। सम्भव है, यही बात हो। परन्तु उस वाणी के सुनते ही उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया। फिर जयसिंह ने माथा नवा कर मूर्ति को प्रणाम किया। वे शस्त्र लेकर मन्दिर से बाहर चले गये।

आठवाँ परिच्छेद

गोमती नदी के दक्षिण भाग में एक जगह बडा ही ऊँचा टीला है। वर्षा की धारा और छोटे छोटे सोतों ने इस उच्च भूमि को अनेक गढे खड्डो में विभक्त कर डाला है। वहाँ से कुछ दूर ठीक अर्धचन्द्र के आकार के बड़े बडे पेडों ने इस भूमिखण्ड को घेर रक्खा है। किन्तु इस टीले के बीच में बडा पेड एक भी नहीं है। कहीं कहीं उस टीले पर केवल साखू के छोटे छोटे पेड हैं जो बढने नहीं पाते, काले होकर झुके पडे हैं। पत्थर के टुकडे बहुतायत से इधर उधर बिखरे पडे हैं। एक दो हाथ चौडे सैकडो सोते टेढे मेढे रास्ते से घूमते फिरते आपस मे मिल कर नदी में जा मिले हैं। यह जगह लोगो से बिलकुल खाली है। उस टीले पर ऐसे वृक्ष नहीं हैं जो दृष्टि को रोक सके। यहाँ से गोमती नदी और उसके दूसरे किनारे के चित्र विचित्र सुन्दर धानो के खेत इत्यादि बहुत दूर तक देख पडते हैं। गोविन्दमाणिक्य प्रतिदिन प्रात काल यहाँ टहलने आते थे। साथ में एक मुसाहब या एक नौकर भी नहीं आता था। वे कभी कभी मछुओं को गोमती में मछली पकडते दूर से देखते थे। उन लोगो की प्रसन्न मूर्त्ति को राजा [illegible] तरह, स्थिरभाव से देखते थे। वे [illegible] थे कि उन सबके मुँह पर आत्मा की ज्योति चमक

आता था। आज-कल बरसात के सबब से वे हर रोज नहीं आ सकते थे किन्तु जिस दिन आसमान साफ रहता था उस दिन आते थे। परन्तु जब आते थे तब छोटे लडके ताता को भी अपने साथ अवश्य लाते थे।

ताता को अब ताता नाम से पुकारने को जी नहीं चाहता। क्योंकि एक मात्र जिसके मुख से ताता सम्बोधन प्रिय लगता था वह अब इस ससार में नहीं है। पाठको के निकट ताता शब्द का कोई अर्थ नहीं। किन्तु हासी जब प्रात काल साखू के जगल में छल करके, सखुए की आड में छिप कर, अपने मधुर स्वर को कुछ तेज करके पुकारती थी, "ताता" इसी तरह उसके जवाब में पेड़ पेड पर से जब दाहियल पची पुकार उठते थे और दूर के जगल से प्रतिध्वनि लौट आती थी— "ताता" तब वही ताता शब्द अर्थ से परिपूर्ण होकर सारे जगल मे व्याप्त हो जाता था। तब वही ताता एक बालिका के छोटे से हृदय के अत्यन्त कोमल स्नेहरूपी घोंसले को परित्याग कर पची की तरह स्वर्ग की ओर उड जाता था। तब वही एक स्नेह ससिक्त मधुर सम्बोधन समस्त पचियों के प्रात कालीन कलरव को लूट लेता था और प्रभातकालिक प्रकृति की आह्लाद-मयी शोभा के साथ एक छोटी सी बालिका के आनन्दमय स्नेह की एकता कर दिखाता था। अब वह बालिका नहीं है, है केवल वही एक-मात्र बालक। किन्तु ताता नहीं है। ससार के सहस्रश' लोगों के . प्रका

अब वह बालक ही है । "ताता" केवल उस बालिका ही के लिए था ।

महाराज गोविन्दमाणिक्य उस लडके को "ध्रुव" कह कर पुकारते थे । हम भी अब उसे उसी नाम से पुकारेंगे ।

महाराज पहले अकेले ही गोमती के किनारे आते थे, अब ध्रुव को अपने साथ लाते हैं । उसके पवित्र और स्वच्छ मुख की शोभा मे उन्हे देवलोक का प्रतिविम्ब देख पडता है । मध्याह्न के समय जब राजा साहब राज-काज मे लग जाते हैं तब बडे बडे बुद्धिमान् वृद्ध मन्त्री उनको घेर कर खडे हो जाते हैं और उनको अपनी सलाह देते हैं । सुबह की कैफियत यह कि एक छोटा सा लडका उन्हे ससारचक्र से बाहर ले आता है । उसके उन बडे बडे प्रशान्त नयनो के आगे राग आदि विषयो के सभी कौटिल्य संकुचित हो जाते हैं । लडके का हाथ पकड कर मानो महाराज ससार के मध्यवर्ती, दूर तक फैले हुए, एक सीधे बृहत् राजमार्ग पर जा खडे होते हैं । वहा से मानो उन्हें अन्तर्हित सुन्दर नीलाकाशरूपी चँदोवे (शामियाने) के नीचे विपुल ब्रह्माड की विस्तृत सभा देख पडती है । वहाँ से मानो भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक आदि सप्त लोको के सङ्गीत की कुछ कुछ प्रतिध्वनि सुन पडती है । और, उस सीधी सडक में मानो सभी पदार्थ स्वच्छ और स्वभावत सुन्दर जान पडते हैं । आगे बढने ही का एक-मात्र उत्साह होता है । तीव्र चिन्ता, विचार, रोग, शोक, सभी दूर हो जाते हैं । महाराज उस प्रभात समय, उस सन्नाटे के

जंगल में, नदी के किनारे उस निर्बन्ध आकाश में एक बालक के प्रेम में डूब कर मानो अपार प्रेमसमुद्र का मार्ग देख रहे हैं।

गोविन्दमाणिक्य ध्रुव को गोदी में बैठा कर उसे ध्रुवोपाख्यान सुना रहे हैं। वह उसको कुछ ज्यादा समझता है, सो नहीं, किन्तु राजा का मतलब यह कि ध्रुव के मुख से अर्धस्फुटित स्वर में इस ध्रुवोपाख्यान को पुनर्वार सुनें।

कथा सुनते सुनते ध्रुव ने कहा—मैं वन को जाऊँगा।

राजा—वन क्या करने जाओगे?

ध्रुव— हलि (हरि) को देखने जाऊँगा।

राजा—हम तो हरि को देखने ही के लिए इस जंगल में आये हैं।

ध्रुव—हलि कहाँ हैं?

राजा—इसी जगह।

ध्रुव ने कहा—"बहन कहाँ हैं?" इतना कह कर वह उठ खड़ा हुआ और पीछे की तरफ घूम कर देखने लगा। उसके मन में ऐसा हुआ मानो उसकी बहन पहले की तरह एकाएक पीछे की तरफ़ से उसकी आँखें मूँदने के लिए आ रही है। किसी को आते न देख उसने गर्दन झुका कर और आँखें उठा कर फिर राजा से पूछा—बहन कहाँ है?

राजा—तुम्हारी बहन को हरि बुला ले गये हैं।

ध्रुव—हलि कहाँ हैं?

राजा ने कहा—ध्रुव, उनको पुकारो । मैंने जो वह गीत तुमको सिखाया था उसी को गाओ ।

ध्रुव झूम झूम कर गाने लगा ।

हलि तुमको हलौ वन माहीं ।
मैं बालक अछ (स) हाय अकेला कोउ छग में नाहीं ।
छतिमिल (र) घोल गहन विच घूमौं कतहुँ न पन्थ लखाहीं ॥
कहा कलूँ केहि विपति छुनाऊँ लखौं न तुम्र पल छाहीं ।
काल लात्ति कब आय तुलैहै तेहि डल मन अकुलाहीं ॥
लेहु उबालि ईछ अब तुम विन औल न कोउ दलछाहीं ।
ह्वैहैं कबहुँ कि विफल, नाथ हित नील न नयन छुखाहीं ॥
जग जाहिल छुधि लेहि दयानिधि गहि भक्तन की बाँही ।
छव पुकाल आछा है ताकी लाखनहाल छदाहीं ॥
घोल अगाध अन्ध कालहु मे तुम्र दलि (ह) ग गति दल छाहीं ।
तुम्हले भक्तन को अगम्य हूँ पन्थ छुगम है जाहीं ॥
ध्लु(ध्रु)व तुमको चाहत निछि वाछल तुम ध्लुव पै ललचाहीं ।
जनछीदन चाहत तुमही को औल जाउँ केहि पाहीं ॥

"र" की जगह 'ल' और 'स' की जगह 'छ' का उच्चारण करके और कुछ मुँह के भीतर ही रख कर अधबोलिये का प्रत्यक्ष उदाहरण होकर ध्रुव झूम झूम कर अपने अमृतमय स्वर में इस गीत को पढ गया । इसे सुन कर राजा का मन आनन्द में मग्न हो गया । उस दिन का भोर और दिनों से दूना प्रिय हो उठा । चारों तरफ नदी, वन, वृक्ष और लताये

हँसने लगीं । उन (गोविन्दमाणिक्य) को सूर्य की सुनहरी किरणरूप अमृत से सींचे हुए स्वच्छ आकाश में किसी के अनुपम सुन्दर सहास्य मुख की शोभा देख पडी । ध्रुव जिस प्रकार उनकी गोद में बैठा है उसी तरह माना उनको भी किसी ने दोनो बाँहों के बीच अपनी गोद मे उठा लिया । उन्होंने अपने को, अपने चारो ओर के रहनेवालो को और सांसारिक सभी जड-चेतन पदार्थो को किसी की गोद मे बैठे देखा । उनके प्रेम और आनन्द ने, सूर्य की किरणों की तरह, दशो दिशाये भर दी । चारो ओर प्रेम और आनन्द ही दिखाई देने लगे । ऐसे समय हथियार धारण किये जयसिह गुफा के रास्ते से एकाएक राजा के सामने आकर खडे हुए । राजा ने दोनो हाथ बढा कर कहा—"आओ जयसिह, आओ ।" राजा उस समय लडके के साथ मिल कर बिलकुल लडके से हो रहे हैं । अभी उनकी राज-मर्यादा कहाँ । जयसिह ने धरती में माथा टेक कर राजा को प्रणाम किया । राजा प्रत्यभिवादन कर बोले—जयसिह, तुम भी तो मेरे प्रणम्य हो । तुम्हारा जन्म राज-कुल में है । तुम क्षत्रिय हो ।

जयसिह—महाराज, मेरी एक प्रार्थना है ।

राजा—क्या ? बोलो ।

जयसिह—देवी आपके ऊपर नाराज हुई हैं ।

राजा—क्यों, मैंने उनकी नाराजगी का क्या काम किया है ?

महाराज, मेरे सन्देह को मत बढ़ाइए। किनारे से ढकेल कर बीच समुद्र में मुझे मत फेंकिए। आपकी बात से तो मेरे चारों तरफ और अन्धकार ही बढ़ रहा है। मेरा जो विश्वास था, मेरी जो भक्ति थी, वही बनी रहे। उसके परिवर्तनार्थ मैं इस कुहरे में पड़ना नहीं चाहता। देवी की आज्ञा हो, चाहे गुरु की आज्ञा हो, वह एक ही बात हुई। मैं उसका अवश्य पालन करूँगा।" यह कह कर जयसिंह वेग से उठ खड़े हुए और उन्होंने अपनी तलवार निकाल ली। सूर्य्य की किरण में तलवार बिजली की तरह चमकने लगी। जिसे देख ध्रुव जोर से रोने लगा। उसने राजा की देह से लिपट कर अपने छोटे छोटे हाथों से प्राण अर्पण कर यथासम्भव उनको छिपाया। राजा ने जयसिंह की ओर कुछ ध्यान न देकर ध्रुव को ही अपनी छाती से लगा रक्खा।

जयसिंह ने तलवार को दूर फेंक दिया और ध्रुव की पीठ पर हाथ फेर कर कहा—"कोई डर नहीं, बच्चा कोई डर नहीं। लो, मैं यह चला। तुम इनकी उदार-छाया में रहो। इनके विशाल हृदय में विराजो। तुमको कोई जुदा न करेगा।" यह कह कर और राजा को प्रणाम करके जयसिंह चलने को उद्यत हुए। एकाएक कुछ विचार कर फिर लौटे और बोले—महाराज को सावधान किये देता हूँ। आपके भाई नक्षत्रराय ने आपको इस संसार से उठा देने का निश्चय किया है। आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी की रात को देव-पूजा होगी। उस दिन आप सावधान रहिएगा।

राजा ने हँस कर कहा—नक्षत्र किसी तरह मेरी हत्या न कर सकेगा । वह मुझ पर प्रेम रखता है । जयसिंह चले गये ।

ध्रुव की ओर देख कर राजा बड़ी श्रद्धा के साथ बोले—आज तुम्हीं ने रक्तपात से धरती को बचाया है । इसी अभिप्राय से तुम्हारी बहन तुमको मेरे पास छोड़ गई है । यह कह कर राजा ने ध्रुव के गालो पर से आँसू की धारा को पोंछ डाला । ध्रुव ने फिर भोलेपन से कहा—बहन कहाँ है ?

इसी समय मेघ ने घिर कर सूर्य्य को ढक लिया । नदी के ऊपर काली घटा की छाया पड़ने लगी । वन का दूरवर्ती प्रान्त मेघ ही की तरह श्यामल हो उठा । पानी बरसने का लक्षण देख कर राजा राजभवन मे लौट आये ।

नवाँ परिच्छेद

मन्दिर बहुत दूर नही है । किन्तु जयसिंह नदी के निर्जन घाट पर घूम फिर कर धीरे धीरे मन्दिर की तरफ़ चले । उनके मन में बड़ी चिन्ता होने लगी । वे नदी के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठ गये और दोनो हाथों से अपने मुँह को ढक कर सोचने लगे—एक काम तो मैंने कर डाला, फिर भी सन्देह चित्त से नहीं जाता । आज से मेरे सन्देह को निवारण कौन करेगा ? क्या अच्छा है और क्या बुरा है, यह आज से मुझे कौन समझावेगा । ससार के सैकड़ों करोड़ो रास्तो के मुहाने

पर खड़ा होकर किससे पूछूँगा कि कौन रास्ता ठीक है। मैं इस अद्भुत मैदान में अन्धवत् खड़ा हूँ। आज मेरे सहारे की लाठी टूट गई।

जयसिंह जब वहाँ से उठे तब कुछ कुछ पानी बरसने लगा था। वर्षा में भीगते भीगते वे मन्दिर की तरफ़ चले गये। उन्होंने रास्ते मे देखा कि बहुत से लोग झुंड बाँधे शोर-गुल करते मन्दिर की तरफ़ से चले आ रहे हैं।

बूढ़ा कहता है—बाप-दादे के वक्त से तो यही होता आया है। न मालूम राजा की अक्ल आज ऐसी क्यों होगई जो उन बातों को बिलकुल उठा दिया।

एक जवान आदमी ने कहा—अब मन्दिर मे जाने की इच्छा नहीं होती। पूजा का अब वह समारोह कहाँ।

किसी ने कहा—यह तो नवाब की सी अमलदारी हो गई। इसका मतलब यही कि बलिदान की निसबत मुसलमानों ही के मन मे द्विधाभाव हो सकता है। किन्तु हिन्दू के मन मे भावान्तर होना आश्चर्य है।

औरतें कहने लगीं—इस राज्य का अब कल्याण न होगा।

एक ने कहा—पुजारीजी ने स्वयं कहा है कि देवी ने स्वप्न में उनसे कहा है—तीन महीने के अन्दर यह देश महामारी से उजड़ जायगा।

ललिता ने कहा—इस बात को क्यों नहीं देखती। माधो

डेढ बरस से रोगी होकर भी बचा चला आता था। बलि बन्द होते ही मर गया।

शान्ता बोली—यही क्यों, मेरे जेठ के लडके को कौन जानता था कि मर जायगा। क्या वह मरने लायक़ था? जैसे ही वैद्य-राज की गोली खाई वैसे ही उसकी आँखे उलट गई।—उस लडके के शोक से और देश का अशुभ होने के डर से शान्ता अधीर हो गई।

तिनकौडी ने कहा—उस दिन मधुरहाटी के बाजार मे आग लगी, एक घर का भी छप्पर नहीं बचा।

चिन्तामणि किसान ने अपने साथी एक किसान से कहा—बहुत कहने से क्या, देखते क्यो नहीं। इस साल जैसा सस्ता धान हुआ है वैसा और किसी साल नहीं हुआ था। कौन जाने इस साल किसानो के नसीब में क्या बदा है।

बलिदान बन्द होने के बाद और इसके पहले भी जिसको जो कुछ हानि हुई थी उसका सबकी सलाह से बलिदान बन्द होना ही एक-मात्र कारण निर्दिष्ट हुआ। इस देश को त्याग कर अब अन्यत्र जाना ही भला है, ऐसा ही सबका विचार हुआ। पर इस विचार से कुछ हुआ नहीं। कोई देश त्याग करके कहीं न गया। जो जहाँ था वहीं रहा।

जयसिंह का चित्त ठिकाने न था। अतएव इन सब बातो पर कुछ विशेष ध्यान न देकर वे बराबर मन्दिर में जाकर उपस्थित हुए। देखा कि रघुपति पूजा समाप्त करके मन्दिर के बाहर

बैठा है। जयसिंह ने बड़ी लम्बी लम्बी डग से रघुपति के पास जाकर अधीर स्वर में पूछा,—गुरुदेव, देवी की आज्ञा पाने की इच्छा से आज सवेरे जब मैंने देवी से प्रार्थनापूर्वक प्रश्न किया था तब उसका उत्तर आपने क्यों दिया ?

रघुपति कुछ टालमटोल करके बोला—देवी तो मेरे ही द्वारा अपने कथन का प्रचार करती है। वह अपने मुँह से तो कुछ बोलती नहीं।

जयसिंह ने कहा—तो आप सामने आकर क्यों नहीं बोले। आपने भीतर छिप कर मुझे क्यों ठगा ?

रघुपति रुष्ट होकर बोला—चुप रहो। मैं क्या सोच कर कौन काम करता हूँ, उसे तुम क्या समझोगे। जो मुँह में आवे उसे ही वाचाल की तरह मत बका करो। मैं जो कुछ आज्ञा दूँ, उसी का तुम पालन करो, और कोई बात मत पूछो।

जयसिंह चुप हो रहे। उनका सन्देह और भी बढ़ गया। थोड़ी देर के बाद कहा—आज सवेरे मैंने देवी से कहा कि यदि वह अपने मुँह से कुछ आज्ञा न देगी तो राजहत्या की घटना मैं कभी न होने दूँगा—उस काम मे बाधा डालूँगा। जब मुझे निश्चित रूप से मालूम होगया कि देवी कुछ आदेश नहीं करती तब मैंने महाराज के निकट नक्षत्रराय की प्रतिज्ञा जाहिर करके उन्हे सावधान कर दिया।

रघुपति कुछ देर तक चुप बैठा रहा। फिर अपने बेहद

गुस्से को दबा कर उच्च स्वर मे बोला—मन्दिर के भीतर चलो। दोनो मन्दिर के भीतर चले गये।

रघुपति ने कहा—भगवती के चरण छूकर शपथ करो और कहो कि आषाढ शुक्ला चतुर्दशी को राज-रक्त लाकर इन चरणों मे उपहार दूँगा।

जयसिह सिर झुका कर कुछ देर तक चुप रहे। इसके बाद एक बार गुरु के मुँह की ओर और एक बार मूर्त्ति की ओर सिर उठा कर देखा। फिर देवी की मूर्त्ति का स्पर्श करके धीरे धीरे कहा—आषाढ शुक्ला चतुर्दशी को राज-रक्त लाकर इन चरणो मे उपहार दूँगा।

दसवाँ परिच्छेद

राज-भवन मे आकर महाराज ने राज्य के मामूली कामो को समाप्त करके छुट्टी पाई। मेघ घिर आने से फिर अँधेरा छा गया। महाराज का मन बडा ही उदास है। और दिन नक्षत्रराय दरबार में उपस्थित रहते थे किन्तु आज वे भी हाजिर न थे। राजा ने उनको बुला भेजा। उन्होंने आने मे असमर्थता दिखला कर कहला भेजा कि हमारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। राजा स्वय नक्षत्रराय के पास गये। नक्षत्रराय ने सिर उठा कर राजा की ओर देखा तक नहीं। एक लिखा हुआ कागज हाथ में लेकर ऐसे बन गये मानो किसी गहरी चिन्ता मे मग्न हैं।

राजा ने कहा—नक्षत्र, तुम्हारी तबीयत कुछ खराब है ?

नक्षत्रराय कागज को बार बार उलट पलट कर हाथ की उँगली की ओर देखते हुए बोले—खराब ! नहीं खराब तो कुछ नहीं, यही एक जरूरी काम था—हाँ, हाँ, खराब भी हो गई थी, कुछ ख़राब ही की तरह, सच है ।

नक्षत्रराय अत्यन्त अधीर हो गये । गोविन्दमाणिक्य बड़ी उदासी से नक्षत्र के मुँह की ओर देखने लगे और मन ही मन कहने लगे—हाय हाय ! स्नेह के घर मे हिंसा ने प्रवेश किया है । वह साँप की तरह छिप कर रहना चाहती है, पर मुँह दिखलाना नहीं चाहती । हम लोगों के जङ्गल में क्या जीव-हिंसक जन्तु काफी नहीं हैं ? तो क्या अब मनुष्य भी मनुष्य को देख कर डरेगा ? क्या भाई भी भाई के पास निर्भय होकर न रहने पावेगा ? यही मेरे भाई हैं । इन्हीं के साथ नित्य एक घर मे रहता हूँ, एक आसन पर बैठता हूँ, हँसी- खुशी से बातें करता हूँ । किन्तु ये मेरे पास रह कर मेरे ही निमित्त मन के भीतर छुरी को सान पर चढा रहे हैं ।—गोविन्दमाणिक्य के निकट उस समय यह संसार हिंसक जन्तुओं से भरे हुए जङ्गल के सदृश ज्ञात होने लगा । निविड अन्धकार के बीच चारो तरफ केवल दाँत और तीक्ष्ण नखों की शोभा दिखाई देने लगी । जोर से साँस लेकर महाराज ने अपने मन में सोचा—मैं इस प्रेम-भाव-विहीन हानि-कारक राज्य में बच कर अपने जाति-भाइयो के मन मे केवल हिंसा, लोभ और शत्रुता की आग भड़का रहा

हूँ । मेरे सिंहासन के चारो ओर मेरे प्राण से भी अधिक प्रिय आत्मीयगण मेरी ओर देख कर मन ही मन मुँह टेढा करते हैं, दाँत पीसते हैं और जजीर मे बँधे हुए भयङ्कर कुत्तों की तरह चारो तरफ से मेरे ऊपर टूट पडने के हेतु मौका ढूँढ रहे हैं। इन लोगो के तीव्र नखाघात से छिन्न भिन्न होने की अपेक्षा और इन लोगो की रक्त-पिपासा निवृत्त करने की अपेक्षा यहाँ से कहीं अन्यत्र चला जाना ही बेहतर है। भोर के समय आकाश में गोविन्दमाणिक्य ने जो प्रेम-प्रसन्न मुँह की शोभा देखी थी वह इस समय कहाँ छिप गई।

महाराज उठ खडे हुए और गम्भीर भाव से बोले—नक्षत्र, आज तीसरे पहर हम तुम दोनो गोमती के किनारे निर्जन वन में घूमने चलेंगे।

इस गहरे भाव से भरी हुई राजा की आज्ञा के विरुद्ध नक्षत्र के मुँह से कोई बात नहीं निकली। किन्तु अनेक प्रकार के सन्देह और शङ्काओं से उनका दिल घबरा उठा। उनके मन मे यो तरङ्गें उठने लगीं—महाराज इतनी देर तक स्थिरभाव से मेरे ही मन की तरफ दृष्टि गडाये बैठे थे। मेरे दिल मे जो विचार, अँधेरे गढे के भीतर कीडों की तरह, खलबला रहे थे वे सब मानों प्रकाश देख एकाएक चञ्चल होकर उस जगह बाहर निकल पडे। डरते डरते नक्षत्रराय ने राजा के मुँह की ओर एक बार देखा। उनके मुँह पर गहरी उदासी के साथ शान्ति-भाव छाया हुआ है, किन्तु उसमें क्रोध का लेश तक नहीं

मनुष्य के हृदय की कठोरता और क्रूरता देख कर उनके मन में अगाध शोक व्याप रहा था।

वह समय आ पहुँचा। अभी तक आसमान में बादल छा रहे हैं। नक्षत्रराय को साथ लेकर महाराज पैदल ही जगल की तरफ चले। अभी शाम होने में कुछ देरी है किन्तु मेघो के अन्धकार से साँझ हो जाने का भ्रम हो रहा है। कौए जगल के बीच इधर उधर से आकर बेहद काँव काँव कर रहे हैं। दो एक चीले अब भी आसमान मे चक्कर लगा रही है। दोनो भाइयो ने जब निविड वन मे प्रवेश किया तब नक्षत्रराय का शरीर थरथराने लगा। बडे बडे पुराने पेड जटिल होकर खडे हैं। वे कुछ बोलते नहीं, पर स्थिर-भाव से चींटी के चलने का शब्द भी सुन लेते हैं। वे केवल अपनी छाया की तरफ और अपने नीचे अन्धकार की तरफ टकटकी लगाये देख रहे है। इस जटिल रहस्यमय जगल के भीतर नक्षत्रराय आगे चलना चाहते है पर पाँव नहीं उठता। चारो तरफ अगाध शान्ति-भाव का भ्रूभङ्ग देख उनका दिल धडकने लगा। नक्षत्रराय को बडा ही सन्देह और डर हुआ। भयङ्कर अदृष्ट की तरह राजा चुपचाप इस शाम के वक्त इस पृथ्वी के बीच से उन्हे कहाँ लिये जा रहे हैं, इसका कुछ भी पता उन्हे न लगा। मन मे समझा कि वे राजा के पास गिरफ़ार हो गये। और सर्वदा के लिए शान्ति देने ही के लिए राजा उन्हे इस वन में ले आये हैं। नक्षत्रराय अब एक-दम भाग सकते तो बच जाते,

परन्तु उन्हें ऐसा जान पडता था जैसे कोई उनके पाँव बाँध कर खींचे लिये जा रहा हो। अब उनकी रक्षा का और कोई उपाय नहीं।

जङ्गल में कितनी ही जगह खाली पड़ी है। उसमें एक प्राकृतिक झील की तरह है, जो बरसात में पानी से भर जाती है। उसी झील के अन्दर सूखी जमीन पर टहल फिर कर राजा ने एकाएक खड़े होकर कहा—ठहरो।

नक्षत्रराय चौंक कर खड़े हो गये। उनको ऐसा लगा कि राजा की यह आज्ञा सुन कर मानो उस समय काल की गति रुक गई। उसी समय मानों जङ्गल के वृक्ष झुक कर खड़े हो गये। नीचे पृथ्वी और ऊपर आकाश मानो साँस रोक कर स्थिर-भाव से देखने लगे। कौओं का कोलाहल बन्द हो गया। वन में बिलकुल सन्नाटा छा गया। एक भी शब्द कहीं सुनाई न दिया। केवल वही "ठहरो" शब्द मानो बिजली की गति से पेड़ पेड़ पर, डाल डाल पर, सर्वत्र व्याप्त हो गया। जङ्गल के एक एक कर सभी पत्ते मानो उसी शब्द का धक्का खाकर खड़खड़ाने लगे। नक्षत्रराय भी दरख्त की तरह स्थिर-भाव से खड़े हो गये।

तब नक्षत्रराय के मुँह की तरफ अपनी मर्मान्तिक विषाद-युक्त दृष्टि स्थिर करके राजा निश्छल भाव से बोले—नक्षत्र, तुम मुझको मारना चाहते हो?

वज्राहत व्यक्ति की तरह नक्षत्र खड़े रहे। जवाब तक दे का उनको होश न रहा।

राजा ने कहा—भाई, मुझे क्यों मारोगे ? राज्य ही लोभ से न ? क्या तुम अपने मन में सोचते हो कि राज्य केवल सोने के सिंहासन, हीरे के मुकुट और राजच्छत्र में ही धर है ? इस मुकुट, इस राजच्छत्र और इस राज दण्ड का बोझ कितना है, जानते हो ? लाखों मनुष्यों की चिन्ता इसी हीरे मुकुट से ढकी हुई है। अगर राज्य लेना चाहते हो तो हजारे मनुष्यों के दुख को अपना दुख समझो, हजारों की विपत्ति को अपनी विपत्ति जान कर स्वीकार करो, हजारों लोगों की दरि द्रता को अपनी दरिद्रता मान कर उसे माथे चढ़ाओ। ऐसा जो कर सके वही यथार्थ मे राजा है। वह झोपड़ी में रहे चाहे महल में, जो व्यक्ति सब लोगों को अपना करके जानता है वे सभी लोग उसी के हैं। उसके ऐश्वर्य को, उसकी प्रतिष्ठ को और उसके सुख को असख्य सेना लाकर भी कोई अपहरण नहीं कर सकता। पृथ्वी के दु ख का जो नाश करे वही पृथ्वी का राजा है। किन्तु पृथ्वी की सम्पत्ति और लोहू को जो चूसता है वह तो डाकू है—हजारों अभागियों के आँसुओं की धारा उसके माथे पर दिन रात बरसा करती है। कोई इतना बड़ा राजच्छत्र नहीं जो उस अभिशाप की तीक्ष्ण धारा से उसकी रक्षा कर सके। उसके अधिकाधिक राज-भोग के भीतर सैकड़ों भुखमरों की क्षुधा जा जाकर छिपी है। वह असहाय लोगों की

दरिद्रता को गला कर उसी के सोने का भूषण बना कर पहनता है। उसके धरती तक फैले हुए राज-वस्त्र के भीतर जाड़े से व्यथित सैकड़ों लोगों के मैले फटे चिथड़े घुसे हैं। भाई, राजा को मार डालने ही से किसी को राज्य नहीं मिलता। पृथ्वी को वश करके राजा होना अच्छा लगता है।

गोविन्दमाणिक्य इतना कह कर चुप हो गये। नक्षत्रराय सिर झुका कर चुपचाप खड़े रहे।

महाराज ने म्यान से तलवार निकाली और नक्षत्रराय के आगे रख कर कहा—भाई, इस जगह कोई आदमी नहीं, कोई साक्षी नहीं। यदि भाई के कलेजे में भाई छुरी भोंकना चाहे तो उसके लिए यही उपयुक्त जगह है और यही ठीक समय है। इस जगह कोई तुम्हारी निन्दा न करेगा। तुम्हारी और मेरी नसों में एक ही खून बह रहा है। एक ही माता-पिता, एक ही दादे परदादे का लोहू मेरे और तुम्हारे शरीर में सञ्चालित हो रहा है। तुम उसी लोहू को बरबाद करना चाहते हो। किन्तु ऐसा काम मनुष्यों के रहने की जगह में न करो। क्योंकि उस जगह इस लोहू का छींटा पड़ेगा तो गुप्त रीति से भ्रातृ-भाव का पवित्र बन्धन ढीला पड़ जायगा। पाप का अन्त कहाँ जाकर होता है, इसे कौन जाने। पाप का एक भी बीज किसी जगह पड़ जाय तो उसके छिपाने की हजार चेष्टा करने पर भी देखते देखते वहाँ हजारों पेड़ उत्पन्न हो जाते हैं। मनुष्यों का यह अति सुन्दर समाज धीरे धीरे किस तरह जंगल में मिल

जाता है, उसे कोई नहीं जान सकता। अतएव शहर में, देहात में, जहाँ निश्छल और निःशङ्कभाव से भाई भाई को प्यार करते हों ऐसे भाइयों के प्रेमावास मे तुम्हें भाई का खून न करना पड़े, इसी लिए आज तुमको मैं इस जगल में बुला लाया हूँ। यह कह कर राजा ने नक्षत्रराय के हाथ मे तलवार उठा कर दे दी। किन्तु उसके हाथ से तलवार नीचे गिर पड़ी।

नक्षत्रराय दोनो हाथो से अपने मुँह को छिपा कर रोने और रुद्धकण्ठ से कहने लगे—भाई साहब, मैं अपराधी नहीं हूँ। मेरे मन मे इस तरह की भावना कभी उत्पन्न नहीं हुई।

राजा उनको गले लगा कर बोले—सो मैं जानता हूँ। तुम क्या कभी मेरा वध कर सकते हो। मैं जानता हूँ, तुमको चन्द लोगो ने बुरी सलाह दी है। इसमे तुम्हारा दोष नहीं है।

नक्षत्रराय—और कोई नहीं, केवल रघुपति मुझको यह उपदेश देता है।

राजा—तो उससे दूर रहो।

नक्षत्र—आप बता दीजिए, मैं कहाँ जाऊँ। मैं अब यहाँ रहना नहीं चाहता। मैं अब इस जगह से ही भागना चाहता हूँ।

राजा—तुम बराबर मेरे ही पास रहो, और कहीं मत जाओ। रघुपति तुम्हारा क्या करेगा।

नक्षत्रराय ने राजा का हाथ खूब जोर से पकड़ लिया मानो उन्हे रघुपति खींच कर ले जायगा, इसी का डर हो रहा है।

———

ग्यारहवाँ परिच्छेद

राजा का हाथ पकड़े जब नक्षत्रराय जंगल से घर लौटे आ रहे थे तब भी आकाश से कुछ कुछ प्रकाश आ रहा था, किन्तु जंगल के अधोभाग में ऐसा घना अँधेरा हो गया कि मानों अन्धकार की बाढ़ आ गई। अब केवल पेड़ों के ऊपर का हिस्सा नजर आता है। कुछ देर में वह भी छिप जायगा। तब अन्धकार पूर्ण रूप से व्याप्त होकर धरती और आकाश को एक कर देगा।

राजा राज-भवन के रास्ते न जाकर मन्दिर की ओर गये। मन्दिर की सन्ध्या आरती करके रघुपति और जयसिंह घर में एक चिराग जलाये बैठे हैं। दोनों ही गम्भीर-भाव से अपने अपने मन की बातें सोच रहे हैं। चिराग की धुँधली रोशनी में सिर्फ उन दोनों के मुँह की परछाहीं दीख रही है। नक्षत्रराय रघुपति को देख कर उनके सामने अपना मुँह नहीं कर सके। राजा की परछाहीं में अपने को छिपा कर वे धरती की ओर देखने लगे। राजा ने उनको अपने पास खींच कर मजबूती के साथ उनका हाथ पकड़ कर खड़ा किया और स्थिर दृष्टि से एक बार रघुपति के मुँह की ओर देखा। रघुपति ने नक्षत्रराय को तीव्र दृष्टि से देखा। इसके बाद राजा ने रघुपति को प्रणाम किया। नक्षत्रराय ने भी राजा का अनुसरण किया। रघुपति प्रणाम स्वीकार करके गम्भीर स्वर में बोला—जय हो महाराज! राज्य में तो कुशल है?

राजा कुछ ठहर कर बोले—आप आशीर्वाद दीजिए कि राज्य का कोई अशुभ न हो। इस राज्य मे जगदम्बा की सन्तान आपस में मेल-मिलाप और प्रेम-भाव से रहे। इस राज्य में भाई के पास से कोई भाई को बहका कर न ले जाय। जहाँ प्रेम है वहाँ कोई हिंसा की नींव न डाले। मैं राज्य के अशुभ का भय मान कर ही यहाँ आया हूँ। पाप-सङ्कल्प के सघर्षण से दावाग्नि जल उठती है। आप उसको शान्त कीजिए। प्रेमरूपी जल की वर्षा कीजिए। पृथ्वी को ठंडी कीजिए।

रघुपति बोला—देवता की क्रोधाग्नि भडक उठने पर कौन उसे शान्त कर सकता है? एक अपराधी के कारण हजारों बेकसूर आदमी उस आग में जल कर भस्म हो जाते हैं।

राजा—इसी का तो अधिक डर है। इसी से तो मैं काँप रहा हूँ। इस बात को समझ कर भी कोई क्यो नहीं समझता। आप क्या नहीं जानते—इस राज्य मे देवता का नाम लेकर देवता के नियम का भङ्ग किया जा रहा है। इसी से अमङ्गल की आशङ्का करके आज शाम को यहाँ आया हूँ। इस जगह पाप का पेड लगा कर मेरे इस धन-धान्ययुक्त सुख के राज्य मे आप देवता के कोपरूपी वज्र को आह्वान करके न ले आवें। आपसे यही बात कहनी थी और खास कर यही कहने के लिए मैं आज यहाँ आया हूँ।—यह कह कर उन्होने रघुपति के चेहरे पर मर्मभेदिनी दृष्टि डाली। राजा के मुँह से निकली हुई वह बुलन्द आवाज, घिरी हुई चक्करदार हवा की

भाँति, उस घर में गूँजने लगी। रघुपति से कुछ उत्तर देते न बना। वह जनेऊ हाथ में लेकर काँपने लगा। राजा उसे प्रणाम करके नक्षत्रराय का हाथ पकड़ कर बाहर आये। उस घर में रह गया केवल एक चिराग, रघुपति और रघुपति की एक लम्बी छाया।

इस समय आकाश में प्रकाश का कहीं नाम नहीं। मेघों ने तारागणों को छिपा रक्खा है। उस भयङ्कर अन्धकार में, पुरवा की लहर में कहीं से आती हुई कदम्ब-फूलों की सुगन्धि पाई जाती है और जङ्गल के वृक्षों का मर्मर शब्द सुनाई देता है। चिन्ता में डूबे हुए राजा परिचित सड़क से बेधड़क चले जा रहे हैं। उन्होंने एकाएक सुना—किसी ने पीछे से "महाराज" कह कर पुकारा है।

राजा ने पीछे की ओर घूम कर पूछा—तुम कौन हो?

परिचित कण्ठ ने कहा—मैं आपका अधम दास जयसिंह हूँ। महाराज, आप मेरे गुरु और मालिक हैं। आपके सिवा मेरे और कोई नहीं। जैसे आप अपने छोटे भाई को हाथ पकड़े इस अँधेरे में लिये जा रहे हैं वैसे ही मेरा भी हाथ पकड़ लें, मुझको भी अपने साथ लेते चलें। मैं अत्यन्त घोर अन्धकार में पड़ा हूँ। मैं कुछ भी नहीं जानता कि क्या करने से अच्छा होगा और क्या करने से बुरा होगा। मैं कभी बाईं तरफ जाता हूँ और कभी दाहिनी तरफ। मुझे पार करनेवाला कोई नहीं। उस अँधेरे में जयसिंह की आँखों से आँसू गिरने

लगे पर किसी ने देखा नहीं। केवल उद्वेग से भरा हुआ जयसिंह का करुणोत्पादक स्वर काँपते काँपते राजा के कानो में प्रवेश करने लगा। जैसे हवा का धक्का खाकर समुद्र चञ्चल होकर काँपने लगता है वैसे ही वह गम्भीर घोर अन्धकार जयसिंह के आर्त स्वर का धक्का खाकर काँपने लगा। जयसिंह का हाथ पकड कर राजा बोले—चलो, मेरे साथ राज-भवन को चलो।

बारहवाँ परिच्छेद

उसके दूसरे दिन जब जयसिंह मन्दिर में लौट आये तब पूजा का समय बीत गया था। रघुपति उदास मुँह किये अकेला बैठा है। इसके पहले इस प्रकार पूजा में कभी नियमभङ्ग नहीं हुआ था।

जयसिंह गुरु के पास न जाकर सीधे अपने बाग मे गये। वहाँ एक झुरमुट के भीतर जा बैठे। उनके चारो तरफ पेड पौधे हिलने डुलने और छाया को नचाने लगे। उनके चारो तरफ फूलों से गुथे हुए पत्तो के गुच्छे, हरे हरे झालरदार पत्तो के ऊपर पत्तों की झालरें, छाया-परिपूर्ण सुन्दर कोमल स्नेह का आच्छादन, सुमधुर आकर्षण, और प्रकृति का प्रीति-पूर्वक सम्मिलन था। इस जगह ये सब उनकी

अपेक्षा करते हैं, पर कुछ पूछते नहीं, विचार मे व्याघात नहीं करते, देखने पर देखते हैं और बोलने पर बोलते हैं। इस शान्तिमय सेवा मे, प्रकृति के इस भीतरी महल मे बैठ कर जयसिंह सोचने लगे। राजा ने जो उपदेश उनको दिये थे उनका वे मन ही मन अनुशीलन करने लगे।

ऐसे समय रघुपति ने धीरे धीरे आकर उनकी पीठ पर हाथ रक्खा। जयसिंह चौंक उठे। रघुपति उनके पास बैठ गया और जयसिंह के मुँह की ओर देख कर स्वर को कँपाता हुआ बोला—मैं तुम्हारा भाव ऐसा क्यों देख रहा हूँ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो तुम धीरे धीरे मेरे पास से हटे जा रहे हो?

जयसिंह ने कुछ कहना चाहा, परन्तु रघुपति बीच में ही रोक कर फिर कहने लगा—क्या तुमने घड़ी भर के लिए भी अपने ऊपर मेरे प्रेम का कभी अभाव देखा है? जयसिंह, मैंने तुम्हारा क्या कोई अपराध किया है? यदि किया भी हो तो मैं तुम्हारा गुरु हूँ, मैं तुम्हारे पिता के तुल्य हूँ। मैं तुमसे क्षमा की भिक्षा चाहता हूँ। मुझे क्षमा-प्रदान करो।

जयसिंह वज्राहत की तरह मर्माहत होकर काँप उठे और गुरु के पाँव पकड़ कर रोने लगे। वे बोले—मैं कुछ नहीं जानता, कुछ नहीं समझता, मुझे यह भी मालूम नहीं कि मैं कहाँ जा रहा हूँ।

जयसिंह का हाथ पकड़ कर रघुपति बोला—वत्स, मैंने

तुम्हारे बचपन से ही तुम्हे माता की तरह स्नेह करके शास्त्र की शिक्षा दी है । तुम्हारे ऊपर विश्वास रख कर तुमको अपने समस्त विचारो मे सयुक्त किया है । आज तुमको मेरे पास से कौन खींचे लिये जा रहा है ? इतने दिनो के स्नेह के ममत्व बन्धन को कौन भग्न कर रहा है ? तुम्हारे ऊपर जो मेरा देवता का दिया अधिकार है उस पवित्र अधिकार पर किसने हस्तक्षेप किया है ? बताओ प्यार, उस महापातकी का नाम बताओ ।

जयसिह ने कहा—प्रभो, आपके पास से मुझे कोई जुदा नहीं करता, आप ही ने मुझको जुदा कर दिया है । मैं घर के भीतर पडा था । आप हठात् मुझको घर से खींच कर रास्ते पर ले आये हैं । आपने कहा, किसका कौन बाप है, किसकी कौन माँ और किसका कौन भाई है । आप ही ने कहा है—ससार मे किसी से कोई सम्बन्ध नहीं । स्नेह प्रेम का पवित्र अधिकार नहीं । जिसको मैं माँ करके मानता था उसको आपने शक्ति बतलाया है । जिस जगह हिंसा की जाती है, जिस जगह रक्तपात होता है, जिस जगह भाई भाई में कलह होता है, जिस जगह दो आदमी लडते हैं उसी जगह यह प्यासी प्रकृति लोहू की लालसा से अपना खप्पर लेकर खडी होती है । यह क्या आपने माता की गोद से मुझे अलग कर राक्षसी के राज्य मे निष्कासित नहीं कर दिया है ?

रघुपति बडी देर तक स्थिर-भाव से बैठा रहा । आखिर लंबी साँस लेकर बोला—"तो तुम स्वाधीन हुए, बन्धन से

विमुक्त हुए, तुम्हारे ऊपर से मैंने अपने सम्पूर्ण अधिकारों को हटा लिया। इसी से यदि तुम सुखी रह सको तो यही सही"—यह कह कर वह उठने लगा।

जयसिंह उसका पाँव पकड़ कर बोले—नहीं, नहीं, प्रभो! आप मुझे त्याग भी देंगे तो भी मैं आपका त्याग नहीं कर सकूँगा। मैं आपके चरणतल में ही रहूँगा। आप जो इच्छा करेंगे वही होगा। आपके बताये रास्ते के सिवा मेरे लिए और कोई मार्ग नहीं।

रघुपति ने जयसिंह को गले लगा लिया। उसके आँसू बह बहकर जयसिंह के कन्धों पर गिरने लगे।

———

तेरहवाँ परिच्छेद

मन्दिर में बहुत लोग जमा हुए हैं। खूब शोर-गुल हो रहा है। रघुपति ने रूखे स्वर से कहा—तुम लोग क्या करने आये हो?

वे लोग भिन्न भिन्न स्वर में बोले—हम लोग भुवनेश्वरी देवी का दर्शन करने आये हैं।

रघुपति ने कहा—देवी हैं कहाँ। वे तो इस राज्य से चली गईं। तुम लोग देवी को कहाँ रख सके। वे चली गईं।

बड़ा बखेड़ा हुआ। चारों तरफ से तरह तरह की बातें सुनाई देने लगीं।—पुजारीजी, आप यह क्या कह रहे हैं।

"हम लोगों ने क्या अपराध किया है ?"

"माँ अब किसी प्रकार प्रसन्न न होंगी क्या ?"

मेरा भतीजा बीमार था। मैं एक दिन भी पूजा चढाने नहीं आया (उसको पूरा विश्वास हुआ कि मेरा अपमान सह्य न करके देवी इस देश मे नहीं रहना चाहती)।

"मैंने मन मे सङ्कल्प किया था कि भगवती को दो बकरे बलिदान दूँगा। अधिक दूर होने के कारण नहीं आसका। दो बकरो की बलि देने मे देरी होने से राज्य मे इस प्रकार अशुभ घटना होगई।" एक आदमी यही अपने मन मे समझ कर अधीर हो रहा था।

गोवर्धन ने जो मन्नत की थी वह उसने पूरी नहीं की। देवी ने भी तो इसी से उसको इतना कष्ट दिया है। उसके पेट मे पिलही बढ कर तोंबी सी लटक गई है। छ महीने से खाट पर पडा है। गोवर्धन अपनी पिलही बढा कर चूल्हे मे जाय ! पर भगवती देश मे रहें। उस व्यक्ति ने मन ही मन इसी तरह प्रार्थना की। सब लोग अभागे गोवर्धन की पिलही के विशेष रूप से बढने की कामना करने लगे।

भीड के बीच में एक बडे लम्बे डील-डौल का आदमी था। उसने सबको धमका कर ठहराया और हाथ जोड कर रघुपति से पूछा—पुजारीजी, देवी क्यो चली गई। हम लोगो से क्या अपराध हुआ है ?

रघुपति ने कहा—तुम लोग देवी को एक बूँद लोहू तक नहीं दे सकते। यही तुम लोगों की भक्ति है!

सब लोग चुप हो रहे। आख़िर फिर बात चलने लगी। कोई कोई धीमे स्वर में कहने लगे—राजा की मनाही है। हम लोग क्या करें।

जयसिंह पत्थर की मूरत की तरह स्थिर-भाव से बैठे थे। "देवी की मनाही" यह बात बिजली की गति से उनकी जीभ के अग्र भाग तक आचुकी थी, पर उन्होंने अपने को रोक लिया। वे कुछ भी न बोले।

रघुपति तीखे स्वर से बोल उठा—राजा कौन होता है! देवी का सिंहासन क्या राजा के सिंहासन के नीचे रहेगा? तब तुम लोग इस मातृहीन देश में राजा को ही लेकर रहो! देखूँगा, तुम लोगों की रक्षा कौन करता है!

उस जन-समाज में गनगनाहट की आवाज गूँजने लगी। सभी चौकन्ने होकर बातें करने लगे।

रघुपति खड़ा होकर बोला—राजा को ही तुम लोगों ने बड़ा माना और अपमान करके माता को अपने देश से बिदा कर दिया। तुम लोग सुख से रहना पसन्द नहीं करते। तीन वर्ष के बाद देखना इतने बड़े देश में तुम लोगों के वासस्थल का चिह्न न रहेगा। तुम लोगों का वंश नष्ट हो जायगा।

जन-मण्डली में समुद्र की तरङ्ग की तरह गनगनाने की आवाज धीरे धीरे स्पष्ट हो उठी। लोगों का समाज

बढ़ने लगा। उस दीर्घकाय मनुष्य ने हाथ जोड़ कर फिर रघुपति से कहा—सन्तान से यदि कोई अपराध हो पड़ता है तो माता अपराध क्षमा करके उसे समझाती है, किन्तु सन्तान को एक-दम छोड़ कर माँ कहीं चली नहीं जा सकती। प्रभो, एक बार बतला दीजिए, क्या करने से माँ लौट आवेगी ?

रघुपति ने कहा—तुम लोगों का यह राजा (गोविन्द-माणिक्य) जब इस राज्य से बहिर्भूत होगा तभी माँ इस देश में फिर पैर रक्खेंगी।

यह बात सुन कर जन-मण्डली की गनगनाहट एकाएक रुक गई। चारों तरफ गहरा सन्नाटा छा गया। आखिर लोग आपस में एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। किसी की हिम्मत न पड़ी कि कुछ बोल सके।

रघुपति ने मेघ की तरह गम्भीर स्वर से कहा—तो तुम लोग दर्शन करोगे ! आओ, मेरे साथ चले आओ। बहुत दूर से तरह तरह की आशा करके तुम लोग भगवती का दर्शन करने आये हो। चलो एक बार मन्दिर में चलो।

सब लोग डरते डरते मन्दिर के आँगन में आकर एकत्र हुए। मन्दिर का द्वार बन्द था, रघुपति ने आहिस्ता आहिस्ता मन्दिर का द्वार खोल दिया।

कुछ देर तक तो किसी के मुँह से बात भी न निकली। सब लोग अवाक् हो रहे। दर्शकों ने प्रतिमा की पीठ अपनी ओर देखी, माँ विमुख हो गई है। एकाएक जन मण्डली में रोने-

चिल्लाने का शोर होने लगा। "माँ एक बार घूम कर खड़ी हो, हम लोगो ने क्या अपराध किया है।" चारो तरफ से "माँ कहाँ गई, माँ कहाँ गई" का कोलाहल मच गया। प्रतिमा पत्थर की ठहरी, वह फिरे कैसे। कितने ही बेहोश होकर गिर पड़े। लड़के बच्चे कुछ न समझ कर रो उठे। कितने ही बुड्ढे, मातृहीन छोटे बच्चो की तरह, विलख विलख कर पुकारने लगे—'अरी मैया अरी मैया—हमें छोड़ कर कहाँ चली गई ?" स्त्रियो के घूँघट खुल गये। आँचल के कपड़े खिसक पड़े। सब विकल हो होकर छाती पीटने लगीं। युवा लोग अपने उच्च स्वर को कम्पित करके कहने लगे—मा, तुमको हम लोग लौटा लावेंगे, तुम्हें न छोड़ेंगे।

एक पागल आदमी गाने लगा—

माता तो हम लोगो की यह, है पत्थर की मूरत।
नहीं इसी से उसने देखी, सन्तानो की सूरत॥

मन्दिर के द्वार पर खड़े होकर मानो सारा राज्य माँ, माँ कह कर विलाप करने लगा किन्तु देवी की मूर्त्ति ज्यो की त्यों विमुख बनी रही। दो पहर की धूप बड़ी कड़ी हो उठी। निराहार जन-मण्डली की क्रदन ध्वनि नहीं रुकी।

तब जयसिंह ने थरथराते हुए पैरो से रघुपति के पास आकर कहा—प्रभो, क्या मैं एक बात भी न कहने पाऊँगा।

रघुपति ने अपनी उँगली उठा कर कहा—नहीं, एक बात भी नहीं।

जयसिंह ने कहा—क्या इसमें सन्देह का कोई कारण नहीं हो सकता ?

रघुपति ने जोर से कहा—नहीं ।

जयसिंह जोर से मुट्ठी बाँध कर बोले—क्या सभी विश्वास करेंगे ?

रघुपति ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से मानो जयसिंह को दग्ध करते हुए कहा—हाँ ।

जयसिंह अपनी छाती पर हाथ रख कर बोले—"मेरा कलेजा फटा जा रहा है ।" इतना कह कर वे उस भीड़ से से निकल कर बाहर चले गये ।

चौदहवाँ परिच्छेद

आज आषाढ़ के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी है । आज ही रात को चौदह देवताओं की पूजा होगी । आज सवेरे ताल वन की आड में जब सूर्य्य उदय हो रहे थे तब पूर्व दिशा मे मेघ न था । सूर्य्य की सुनहरी किरणों से अवगाहित आनन्दमय उपवन मे जाकर जब जयसिंह बैठे तब उनको अपनी सभी पुरानी बातें याद आने लगीं । इस उपवन मे इस पत्थर के बने मन्दिर की पाषाण-रचित सीढ़ियो के बीच मे, इस गोमती नदी के तट में, उस विस्तृत वट की छाया मे, उस छाया से घिरे हुए सरोवर की धार मे, अपने बचपन का समय सुखद स्वप्नवत् स्मरण

होने लगा। जो मनोमुग्ध-कर प्रिय दृश्य उनके बाल्यकाल को स्नेहपूर्वक अटका रखते थे वे सब आज हँस रहे हैं और उनको फिर अपने पास बुला रहे हैं। किन्तु उनका आत्मा उत्तर दे रहा है—"मैं यात्रा करके बाहर आया हूँ। मैं बिदा हो चुका हूँ। मैं अब न लौटूँगा।" उजले पत्थर के मन्दिर पर सूर्य्य की किरणे पड रही हैं और उसकी बाई ओर दीवाल पर मौलसिरी की हिलती हुई डालो की चञ्चल छाया नाच रही है। बाल्यावस्था मे इस पत्थर के मन्दिर को वे जिस प्रकार सचेतन जानते थे, और इन सीढियो के बीच बैठ कर जब खेलते थे तब वे इन सीढियो को जिस प्रकार साथी मानते थे उसी प्रकार आज प्रात कालिक सूर्य की किरणो में मन्दिर को सचेतन और उन सीढियो को भी उसी प्रकार साथी मान कर बालपन की दृष्टि से देखने लगे। मन्दिर के भीतर देवी को आज फिर माँ कह कर पुकारने की इच्छा होने लगी किन्तु मारे ग्लानि के उनका हृदय भर आया। उनकी आँखो से आँसू उमड कर बह चले।

रघुपति को आते देख कर जयसिह ने आँसू पोंछ डाले। वे गुरु को प्रणाम करके खडे हो गये। रघुपति ने कहा—आज पूजा का दिन है। देवी का पाँव छूकर क्या शपथ की थी, याद है?

जयसिह—याद है।

रघुपति—शपथ का पालन करोगे?

जयसिंह—हाँ ।

रघुपति—देखना बेटा, सावधानी से काम करना ! जान पर आ पड़ने का डर है । मैंने तुम्हारी रक्षा का खयाल करके ही राजा के विरुद्ध प्रजा को भड़का दिया है ।

जयसिंह चुप हाकर रघुपति के मुँह की ओर देखने लगे । उन्होंने कुछ भी जवाब न दिया । रघुपति उनके माथे पर हाथ रख कर बोला—मेरे आशीर्वाद से तुम अपने काम को निर्विघ्न सिद्ध कर सकोगे और देवी की आज्ञा का पालन कर सकोगे । यह कह कर रघुपति चला गया ।

दिन के तीसर पहर राजा एक कमरे मे बैठ कर ध्रुव के साथ दिल बहला रहे हैं । ध्रुव के आज्ञानुसार एक बार सिर से मुकुट उतारते हैं फिर एक बार पहनते हैं । महाराज के इस क्लिष्ट व्यापार को देख कर ध्रुव हँसते हँसते व्याकुल हो रहा है । राजा मुसकुरा कर बोले—मैं अभ्यास कर रहा हूँ । जिनकी आज्ञा से यह मुकुट जिस आसानी से पहन सकता हूँ उसी तरह उनकी आज्ञा से यह मुकुट आसानी से उतार भी सकूँ । मुकुट का पहनना कठिन है किन्तु उसका उतारना और भी कठिन है ।

ध्रुव के मन मे एक भाव का उदय हुआ । कुछ देर के बाद राजा की ओर देख कर और अपने मुँह मे उँगली डाल कर वह बोला—"तुम लाजा हो" । राजा शब्द के "र" अक्षर को एक बारगी उडा कर भी ध्रुव के मन मे जरा सा अनुताप

न हुआ। राजा के मुँह के सामने उनको "लाजा" कह कर उसने अपने जी में पूर्णरूप से आनन्द प्राप्त किया।

ध्रुव की इस धृष्टता को न सह करके राजा बोले—तुम लाजा। ध्रुव—तुम लाजा।

इस विवाद का अन्त न हुआ। किसी ओर कोई प्रमाण नहीं। केवल दैहिक बल के ऊपर बहस चल रही थी। आखिर राजा ने अपना मुकुट लेकर ध्रुव के माथे पर रख दिया। तब तो ध्रुव को कुछ और कहने के लिए जगह न रही।

उसकी सम्पूर्णरूप से हार हुई। ध्रुव के मुँह का आधा हिस्सा उस मुकुट के नीचे छिप गया। उसने अपने मुकुटयुक्त बड़े माथे को झुला कर मुकुट-रहित राजा को हुक्म दिया—कोई कहानी कहो।

राजा—कौन कहानी कहूँ ?

ध्रुव—"बहनवाली कहानी कहो।" ध्रुव कहानी-मात्र को बहनवाली कहानी समझता था। वह समझता था कि बहन जो कहानियाँ सुनाती थी उनके सिवा दुनिया में और कोई कहानी नहीं है।

तब राजा ने पुराण की एक बृहत् कथा कहना प्रारम्भ किया। वे कहने लगे—हिरण्यकशिपु नाम का एक राजा था।

राजा का नाम सुन कर ध्रुव बोल उठा—लाजा मैं हूँ।

अपने ढीले ढाले विशाल मुकुट के जोर से हिरण्यकशिपु के राजत्व को उसने एकबारगी नामञ्जूर किया।

खुशामदी सभासदों की तरह गोविन्दमाणिक्य उस मुकुट-धारी बालक को राजी करने के अभिप्राय से बोले—तुम भी लाजा और वह भी लाजा ।

ध्रुव उसमे भी स्पष्ट-रूप से अपनी अनिच्छा प्रकट कर बोला—नहीं, मैं ही लाजा ।

आखिर जब महाराज ने कहा कि हिरण्यकशिपु लाजा नहीं था वह लाकस (राक्षस) था तब ध्रुव ने उसमे कोई आपत्ति न की ।

उसी वक्त नक्षत्रराय उस कमरे मे आये और बोले—सुना है कि महाराज ने किसी राज-काज के हेतु मुझे बुलाया है । मैं आपके हुक्म का इन्तजार कर रहा हूँ ।

राजा ने कहा—"जरा ठहर जाओ, इस किस्से को खतम कर लूँ।" यह कह कर राजा ने थोड़े ही में सारी कहानी कह कर खतम कर डाली । "लाकक्षस (राक्षस) दुष्ट था" इस प्रकार ध्रुव ने कहानी सुन कर मुख्तसर मे अपनी राय जाहिर की ।

ध्रुव के माथे पर मुकुट देख कर नक्षत्रराय क्रुद्ध गये । ध्रुव ने जब देखा कि नक्षत्रराय की दृष्टि उसकी तरफ अटकी है तब उसने नक्षत्रराय को धीरता के साथ सूचित कर दिया—मैं लाजा हूँ ।

नक्षत्रराय ने कहा—छी, यह बात कोई कहता है । यह कह कर वे ध्रुव के माथे से मुकुट उतार कर राजा के हाथ

में देने को उद्यत हुए। मुकुट छिन जाने की सम्भावना देख ध्रुव सच्चे राजा की तरह चिल्ला उठा। गोविन्दमाणिक्य ने उसको इस आई हुई आफत से बचा लिया। उन्होंने नक्षत्रराय को मुकुट न उतारने दिया।

तदनन्तर गोविन्दमाणिक्य ने नक्षत्रराय से कहा—सुना है रघुपति ठाकुर प्रजा में बे-तरह असन्तोष बढा रहा है। तुम स्वय शहर मे जाकर इस बात की तहकीक़ात करो और मुझे सूचित करो कि यह बात सच है या झूठ।

"जो आज्ञा" कह कर नक्षत्रराय चले गये। चले तो गये, पर ध्रुव के माथे का मुकुट उन्हे जरा भी अच्छा न लगा।

दरबान ने आकर इत्तिला की—पुजारीजी के सेवक जयसिंह हुजूर में हाजिर होने के लिए ड्योढी पर खडे हैं।

राजा—आने दो।

महाराज को प्रणाम करके जयसिंह हाथ जोड कर बोले—महाराज, मैं बहुत दूर देश जाने की तैयारी कर रहा हूँ। आप मेरे राजा हैं। मेरे गुरु हैं। आपसे आशीर्वाद लेने आया हूँ।

राजा ने पूछा—जयसिंह, कहाँ जाओगे?

जयसिंह ने कहा—"महाराज, मुझे मालूम नहीं, मैं कहाँ जाऊँगा। और कोई भी नहीं कह सकता।" राजा को कुछ कहने के लिए उद्यत देख कर जयसिंह बोले—महाराज, आप रुकावट न डालें। आपके रुकावट डालने से मेरी यात्रा सफल

न होगी । आशीर्वाद दीजिए कि यहाँ जो मेरे सन्देह थे वे सब दूर हो जायँ । यहाँ जो मेरे ऊपर एक तरह का मेघ छाया था वह फट जाय । आपके सदृश राजा के राज्य में पहुँच जाऊँ और शान्ति-सुख पाऊँ ।

राजा ने पूछा—कब जाओगे ?

जयसिंह ने कहा—"आज शाम को । महाराज, समय अधिक नहीं है । इसलिए मैं अब आपसे विदा होता हूँ ।" यह कह कर जयसिंह ने राजा को प्रणाम करके उनके पैरों की धूल माथे पर लगाई । राजा के पैरों पर जयसिंह की आँखों से आँसू टपक पड़े ।

जयसिंह जब जाने को तत्पर हुए तब ध्रुव ने धीरे धीरे उनके पास जाकर और उनके कपड़े को खींच कर कहा—तुम मत जाओ ।

जयसिंह हँस कर खड़े हो गये, ध्रुव को गोद में उठा कर और उसके मुँह को चूम कर बोले—मैं किसके पास रहूँगा ? मेरे कौन है ?

ध्रुव ने कहा—मैं लाजा हूँ ।

जयसिंह ने कहा—"तुम राजा के भी राजा हो । तुमने अपने प्रेम में सभी को उलझा रक्खा है ।" यह कह कर ध्रुव को गोद से उतार कर जयसिंह कमरे से बाहर हो गये । महाराज गम्भीर भाव से बड़ी देर तक कुछ सोचते रहे ।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

आज चतुर्दशी तिथि है। मेघ घिर आये हैं। चन्द्रमा का उदय हा गया है। आकाश में कहीं प्रकाश और कहीं अन्धकार है। चाँद कभी बाहर निकलता है, कभी मेघ मे छिप जाता है। गोमती के किनारो के जगल चन्द्रमा की ओर देख कर अपने गहरे घने अन्धकार को मर्माहत कर बीच बीच में लबी साँस ले रहे हैं।

आज रात मे लोगो को घर मे बाहर निकलने की मनाही है। रात को रास्ते मे चलता ही कौन है, किन्तु आज रुकावट है। इससे रास्ते की जन-शून्यता और भी अधिक गहरी मालूम होती है। बस्तीवालों ने अपने अपने घर का चिराग बुता कर द्वार बन्द कर दिया है। रास्ते मे एक भी चौकीदार नहीं। आज चोर भी घर से बाहर नहीं निकलते। जिनको लाश जलाने के लिए मुरदघटा जाना है वे भी मुरदे को घर मे रक्खे सवेरा होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जिनके घर मे लडका मरणासन्न है वे भी वैद्य बुलाने के लिए आज बाहर नहीं जा सकते। और दिन जो भिखमङ्गे रास्ते के पार्श्ववर्ती पेड के नीचे सोते थे वे आज गृहस्थो की गोशाला में आ कर ठहरे हैं।

उस सन्नाटे की रात में गीदड और कुत्ते शहर के रास्तों पर इधर उधर घूम रहे हैं। दो-एक धीते गृहस्थों के दरवाजे के

पास आकर झाँक रहे हैं। मनुष्यों मे केवल एक व्यक्ति आज घर के बाहर है और कोई नहीं। वह एक छुरी को नदी के किनारे पत्थर पर तेज कर रहा है और अन्यमनस्क होकर कुछ सोच रहा है। छुरा पर धार काफ़ी थी। किन्तु वह छुरी तेज करने के साथ ही साथ अपने मानसिक विचार पर भी सान चढाता जाता था, इसी से उसका छुरी को पैना करना समाप्त नहीं होता था। पत्थर की रगड खाकर वह तेज छुरी हिस् हिस् शब्द करती हुई हिंसा की लालसा से गरम हो उठी। अन्धकार के बीच अन्धकार की धारा बही जा रही थी। संसार के ऊपर से अन्धकारमय रात का पहर बहा जा रहा था और माथे के ऊपर आकाश-मण्डल में घने काले बादल का स्रोत बहता जा रहा था।

आख़िर जब मूसलाधार पानी बरसना शुरू हुआ तब जयसिंह को होश हो आया। वे उस गरम छुरी को म्यान के भीतर रख कर उठ खडे हुए। पूजा का समय समीप आ पहुँचा है। उनको अपनी शपथ की बात याद आ गई। अब एक क्षण भी विलम्ब करने से काम न चलेगा।

दीपावली से आज मन्दिर जगमगा उठा है। तेरह देवताओं के मध्य में कालिका देवी खडी होकर मनुष्य-रक्त के लिए जीभ लपलपा रही है। मन्दिर के अन्यान्य कर्मचारियों को विदा कर चौदह देवताओं की मूर्तियों के सामने मन्दिर में रघुपति अकेला बैठा है। उसके आगे एक बृहत् खड्ग रक्खा

हुआ है। वह स्थिर-वज्र के सदृश चमकीला खुला खड्ग दीपों के प्रकाश में चमचमाता हुआ देवी की आज्ञा पालने की प्रतीक्षा कर रहा है।

आधी रात के समय पूजा होगी। समय क़रीब है। रघुपति बड़े व्याकुल-चित्त से जयसिंह के आने की बाट जोह रहा है।

एकाएक जोर से हवा बहने लगी। मूसलाधार पानी बरसने लगा। हवा के झोंको से मन्दिर के सभी दीपो की शिखायें नाचने लगीं। नङ्गी तलवार के ऊपर बिजली खेलने लगी। चौदह देवताओं की ओर रघुपति की छाया मानो सजीव की भाँति नाचती हुई दीप शिखाओं के ताल ताल पर मन्दिर की दीवालो पर नाचने लगीं। एक मृत मनुष्य की खोपड़ी तेज हवा के झोंके से घर भर मे लुढकने लगी। सूखे पत्तों की तरह दो चमगादर मन्दिर के भीतर आकर यकायक उड कर घूमने लगे। दीवालों पर उनकी छाया उड़ने लगी।

आधी रात का समय आ पहुँचा। पहले नजदीक ही, फिर कुछ दूर और तब उससे भी कुछ अन्तर पर गीदड बोल उठे। हवा भी उनके साथ हू हू शब्द करके रोने लगी।

पूजा का समय हो गया। रघुपति अशुभ के भय से घबरा उठा।

ऐसे समय में जयसिंह ने बिजली की तरह आधी रात के अन्धकार से निकल कर मन्दिर के प्रकाश में पाँव रक्खा।

छिपे तौर से जयसिंह के पास जाऊँ, उसके द्वारा सब बातें अच्छी तरह मालूम हो जायँगी।

नक्षत्रराय ने धीरे धीरे जयसिंह की कोठरी में प्रवेश किया। प्रवेश करने के साथ ही सोचा कि लौट जाने ही में कुशल है। देखा कि जयसिंह की पुस्तकें, उनके कपड़े और घराऊ उपकरण चारों तरफ यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं। बीच में रघुपति बैठा है। जयसिंह का पता नहीं। रघुपति की लाल लाल आँखें अङ्गारे की तरह बल रही हैं। सिर के बाल बिखरे हुए हैं। नक्षत्रराय को देखते ही खूब जोर से मुट्ठी कस कर रघुपति ने उनका हाथ पकड़ा और बलात् उनको धरती पर बैठाया। नक्षत्रराय के तो होश उड़ गये। रघुपति अपनी लाल लाल आँखों से नक्षत्रराय के अङ्ग प्रत्यङ्ग और हृदय तक को दग्ध करता हुआ पागल की तरह बोला—"रक्त कहाँ है?" नक्षत्रराय के हृदय में मानो रक्त की तरङ्गे उछलने लगीं। दिल धड़कने लगा। मुँह से कोई बात न निकली।

रघुपति ने ऊँचे स्वर से कहा—तुम्हारी प्रतिज्ञा कहाँ गई? रक्त कहाँ है?

नक्षत्रराय हाथ-पैर हिलाने लगे, बाँई ओर हट कर बैठे और अपने कपड़े का छोर हाथ में लेकर खींचने लगे। उनकी देह से पसीना बह चला। वे सूखे मुँह से बोले—पुरोहितजी!

रघुपति ने कहा—अब की बार देवी ने स्वयं तलवार उठाई है। इस बार चारों तरफ रक्त की धारा बह चलेगी। इस बार

तुम लोगों के वश में एक बूँद लोहू तो बचेहीगा नहीं। तब मैं नक्षत्रराय का भ्रातृस्नेह देखूँगा।

भ्रातृस्नेह, हा, हा, हा —नक्षत्रराय के मुँह से इस प्रकार पहले की सी कोई हँसी न निकली। उनका कण्ठ सूख गया।

रघुपति ने कहा—मैं गोविन्दमाणिक्य का रक्त नहीं चाहता। इस संसार में गोविन्दमाणिक्य को जो प्राण से भी अधिक प्रिय है मैं उसी का रक्त चाहता हूँ। उसका रक्त लेकर मैं गोविन्दमाणिक्य के शरीर में लपेटना चाहता हूँ। उसकी छाती लाल हो जायगी। उस लोहू का दाग किसी प्रकार न धुलेगा। यह देखो, आँख पसार कर देखो। यह कह कर उसने चादर हटाई। उसके सारे शरीर में लोहू लगा है, उसकी छाती के बीच कहीं कहीं गाढा लोहू जम गया है।

नक्षत्रराय सहम गये। उनके हाथ-पैर काँपने लगे। वज्र के सदृश कठोर मुट्ठी से नक्षत्रराय का हाथ दबा कर रघुपति बोला—"वह कौन है? गोविन्दमाणिक्य को प्राण से भी बढ कर प्रिय कौन है? किसके न रहने से गोविन्दमाणिक्य की आँख में यह संसार श्मशानवत् प्रतीत होगा और उनके जीवन का लक्ष्य चला जायगा। सवेरे शय्या से उठ कर किसका मुँह उन्हें याद आता है? किसका स्मरण करते हुए ये सोने जाते हैं? उनके हृदयरूपी मन्दिर में सम्पूर्ण रूप से व्याप्त होकर कौन विराज रहा है? वह कौन है? क्या वह तुम्हीं हो?" इतना कह कर रघुपति ने नक्षत्रराय की ओर इस तरह देखा, जैसे चोर

के पहले बाघ भय से काँपते हुए हिरन के बच्चे की ओर एकटक दृष्टि से देखता है ।

नक्षत्रराय झट पट बोल उठे—नहीं, वह मैं नहीं हूँ। किन्तु रघुपति की मुट्ठी को वे छुडा नहीं सके ।

रघुपति—तो कहो, वह कौन है ?

नक्षत्र—वह ध्रुव है ।

रघुपति—कौन ध्रुव ?

नक्षत्र—वह एक लडका—

रघुपति बोला—मैं जानता हूँ । उसे जानता हूँ । राजा की वह अपनी सन्तान नहीं है । वे सिर्फ सन्तान की तरह उसका लालन-पालन करते हैं । लोग अपनी सन्तान का प्यार किस प्रकार करते हैं, सो मैं नहीं जानता, किन्तु रक्षित सन्तान को प्राण से भी बढ कर लोग प्यार करते हैं यह मैं जानता हूँ। अपनी सारी सम्पत्ति की अपेक्षा राजा उसके सुख को ही विशेष करके मानते हैं । अपने माथे पर मुकुट धारण करने की अपेक्षा उसके माथे पर मुकुट देख राजा को अधिक हर्ष होता है ।

नक्षत्रराय आश्चर्ययुक्त होकर बोल उठे—ठीक है ।

रघुपति—ठीक नहीं तो क्या है ? राजा उसे किस दरजे तक प्यार करते हैं सो क्या मैं नहीं जानता ? उसे क्या मैं समझ नहीं सकता हूँ ? मैं भी उसी को चाहता हूँ ।

नक्षत्रराय "हाँ" करके रघुपति की ओर देखने लगे और अपने मन में कहने लगे—मैं भी उसी को चाहता हूँ ।

रघुपति ने कहा—"उसको लाना ही होगा। आज ही लाना होगा। आज रात में ही उसे लाना चाहिए।" नक्षत्रराय प्रतिध्वनि की तरह बोले—आज रात में ही उसे लाना चाहिए।

नक्षत्रराय के चेहरे की ओर कुछ देर तक देख कर रघुपति कण्ठ-स्वर को कोमल करके बोला—यही लड़का तुम्हारा दुश्मन है। क्या तुम उसे जानते हो? तुम राजवंश में उत्पन्न हुए हो। कहाँ का एक अपरिचित-कुलशील बालक तुम्हारे माथे का मुकुट हड़पने के लिए आया है सो क्या तुम समझते हो? जो राज-सिंहासन तुम्हारे लिए अपेक्षा कर रहा था उस सिंहासन पर उसके लिए जगह निर्दिष्ट हो चुकी है। आँखें रहते भी क्या यह तुम्हें नहीं सूझता?

नक्षत्रराय के लिए ये बातें नई नहीं हैं। उन्होंने भी पहले इस प्रकार सोचा था। ज़ोर देकर बोले—आपको और कुछ कहना नहीं होगा। मैं क्या यह नहीं जानता।

रघुपति ने कहा—तो फिर उसको ले आओ, तुम्हारे सिंहासन का कण्टक दूर कर दूँ। दिन के इन कई पहरों को किसी तरह बिता कर तुम उसे किस वक्त लाओगे?

नक्षत्रराय—आज शाम के वक्त, अँधेरा हो जाने पर।

रघुपति जनेऊ छूकर बोला—जो न ला सकोगे तो ब्राह्मण का शाप लगेगा। जिस मन्त्र से प्रतिज्ञा करके उसे पूरा न करोगे तो

लिपट गया। रघुपति ने उसे जबरदस्ती गोद से उतार लिया। ध्रुव "काका" कह कर रोने लगा। नक्षत्रराय की आँखों में आँसू भर आये, किन्तु रघुपति के आगे अपने हृदय की कोमलता दिखलाते उन्हें बड़ी लज्जा आई। उन्होंने स्वाँग कर लिया, मानों वे भी पत्थर के बने हैं। तब ध्रुव रो रोकर बहन, बहन, कह कर पुकारने लगा। बहन उसकी थी कहाँ जो आवे। रघुपति ने वज्र के सदृश कठोर स्वर से उसे एक बार डपट दिया। इससे ध्रुव का रोना रुक गया, केवल रह रह कर वह हिचकी लेने लगा। चौदहों देवता देखते रहे।

गोविन्दमाणिक्य आधी रात के समय स्वप्नावस्था में रोने की आवाज सुन कर जाग उठे। उन्होंने एकाएक सुना, उनके झरोखे के नीचे से कोई अधीर स्वर से उन्हें पुकार रहा है—"महाराज! महाराज!"

राजा ने जल्दी से उठ कर चन्द्रमा के प्रकाश में ध्रुव के चचा केदारेश्वर को देख कर पूछा—क्यों क्या हुआ?

केदारेश्वर—महाराज, मेरा ध्रुव कहाँ है?

राजा—क्यों, क्या अपनी चारपाई पर नहीं है?

"नहीं"।

केदारेश्वर कहने लगा—"जब मैंने तीसरे पहर ध्रुव को यहाँ न देखा तब खोज करने पर नक्षत्रराय के नौकर ने मुझसे कहा कि ध्रुव महल के भीतर युवराज के पास है।" यह सुन कर मैं निश्चिन्त हो गया। रात अधिक बीतते देख

मेरे मन में सन्देह हुआ । दरयाफ़ करने पर मालूम हुआ कि युवराज अपने कोठे पर नहीं हैं । महाराज के पास हाजिर होने के लिए मैंने कितनी ही आरज़ू-मिन्नत की पर द्वारपाल ने मेरी एक न सुनी । इसी से मैंने खिड़की के नीचे से महाराज को पुकार कर जगाया है। मेरा अपराध क्षमा किया जाय ।

राजा के मन में बिजली की तरह एक बात चमक उठी । उन्होंने चार पहरेदारों को बुला कर कहा कि हथियारबन्द होकर मेरे साथ चलो । एक ने कहा—महाराज, आज रात को रास्ते से चलना मना है ।

राजा ने कहा—मैं आज्ञा दे रहा हूँ ।

केदारेश्वर साथ जाने को तत्पर हुए । राजा ने उनको लौटा दिया । आप उस जनशून्य रास्ते से चाँदनी के उजाले में मन्दिर की ओर चले ।

मन्दिर का फाटक जब सहसा खुल गया तब देखा कि सामने तलवार रक्खे नक्षत्र और रघुपति दोनों मद्यपान कर रहे हैं । रोशनी तेज नहीं है, एक मामूली चिराग जल रहा है । ध्रुव कहाँ है ? वह काली की प्रतिमा के पास नींद में बेख़बर सोया है । उसके गालों पर आँसू बहने का दाग सूख गया है । उसका नीचे का होंठ खुला है । मुख पर भय का कोई चिह्न नहीं है । कुछ फ़िक्र नहीं है । वह मानों पत्थर की शय्या पर नहीं है, अभी बहन की गोद में सोया है । और

वहन ने चुम्मा लेकर मानों उसकी आँखों के आँसू पोंछ दिये हैं।

मद्य पीने से नक्षत्र का दिल खुल गया था अर्थात् वे मस्ती मे आ गये थे। परन्तु रघुपति ठिकाने से बैठ कर पूजा के मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रहा था। नक्षत्र की बक बक पर उसका किञ्चितमात्र ध्यान न था। नक्षत्र बक रहे हैं—पुरोहित महाशय, तुम मनही मन डर रहे हो। तुम समझते हो कि मैं भी डरता हूँ। लेकिन डर कुछ नहीं। डर कैसा। किसका डर। मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम समझ रहे हो कि मैं राजा से डरता हूँ। मैं शाह शुजा से नहीं डरता। मुझे शाहजहाँ का डर नहीं। तुमने क्यों नहीं कहा, मैं राजा को पकड लाता। देवी को प्रसन्न कर देता। इस छोटे लडके का रक्त ही कितना होगा।

ऐसे समय एकाएक मन्दिर की दीवार पर परछाहीं पडी। नक्षत्रराय ने पीछे घूम कर देखा—"राजा।" सारा नशा एक ही पल में उतर गया। अपनी परछाहीं की अपेक्षा भी वे अधिक म्लान हो गये। सोये हुए ध्रुव को गोविन्दमाणिक्य ने बडी फुरती के साथ गोद में उठा कर सिपाहियो को हुक्म दिया कि इन दोनो को गिरफ़ार कर लो।

उन सिपाहियो ने रघुपति और नक्षत्रराय के दोनो हाथ पकड लिये। ध्रुव को छाती से चिपटा कर गोविन्दमाणिक्य चाँदनी के उजाले मे उस जन-शून्य पथ से राज-भवन लौट

आये । रघुपति और नक्षत्रराय दोनो सारी रात हिरासत में रहे ।

अठारहवाँ परिच्छेद

आज उस अभियोग का विचार होनेवाला है । न्यायालय में लोगों की भीड उमड पडी है । विचार करने के लिए राजा विचारासन पर विराजमान हैं । सभासद् लोग चारों तरफ बैठे हैं । सामने वे दोनो अपराधी खडे हैं । किसी के हाथ में हथकडा नहीं है । केवल हथियारबन्द सिपाही उन दोनो को घेरे खडे हैं । रघुपति पत्थर के पुतले की तरह खडा है । नक्षत्रराय सिर झुकाये हैं ।

राजा ने रघुपति के अपराध को प्रमाणित करके उससे पूछा—तुमको क्या कहना है ?

रघुपति ने कहा—मेरा विचार करने का अधिकार आप को नहीं है ।

राजा—तो तुम्हारा विचार कौन करेगा ?

रघुपति—मैं ब्राह्मण हूँ । मैं देवता का सेवक हूँ । मेरा विचार देवता ही करेंगे ।

राजा—ईश्वर तो सबका विचार करते ही हैं । हम लोग उनके राजदण्डस्वरूप हैं । हम लोगो के द्वारा ही वे अपराधियों के दण्ड की व्यवस्था करते हैं । पाप का दण्ड और धर्म का

पुरस्कार देने के लिए संसार में उनके हजारों आज्ञावर्ती सेवक वर्तमान हैं। मैं भी उन्हीं में से एक हूँ। उन बातों को लेकर मैं तुम्हारे ऊपर विचार की ज्यादती दिखलाना नहीं चाहता। मैं इतना ही पूछता हूँ कि कल सन्ध्या के समय बलिदान की इच्छा से तुमने एक बालक को चुरा रक्खा था या नहीं?

रघुपति—हाँ।

राजा—तुम अपराध कबूल करते हो न?

रघुपति—अपराध! अपराध कैसा! मैं देवी की आज्ञा का पालन करता था। देवी का काम करता था। तुमने उसमें बाधा डाली है, अतएव अपराध तो तुमने किया है। मैं देवी के मन्दिर का अध्यक्ष हूँ। तुमको अपराधी समझता हूँ। वह तुम्हारे अपराध का विचार करेगी।

राजा उसकी बात का कुछ जवाब न देकर बोले—मेरा नियम यही है कि जो व्यक्ति देवता के नाम पर जीवबलि देगा या देने का उद्योग करेगा उसको देश-निकाले का दण्ड दिया जायगा। वही दण्ड मैंने तुम्हारे लिए निर्धारित किया है। आठ वर्ष के लिए तुम निर्वासित किये गये। सन्तरी लोग तुमको मेरे राज्य से बाहर निकाल आवेंगे।

सन्तरी लोग रघुपति को कचहरी से बाहर ले जाने को उद्यत हुए। रघुपति ने उन लोगों से कहा, "ठहरो।" वह राजा की ओर देख कर बोला, "तुम्हारा विचार तो हो चुका। अब मैं तुम्हारा विचार करूँगा। तुम ध्यान देकर सुनो। "चौदह

देवताओं की पूजा की दो रातों में जो कोई बाहर निकलेगा उसे पुरोहित दण्ड देगा।" मेरे मन्दिर का यही नियम है। इस पुराने नियम के अनुसार तुम मेरे निकट दण्डनीय हो।

राजा—तुम्हारा दण्ड कबूल करने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ।

सभासदों ने कहा—इस अपराध के लिए केवल जुर्माना हो सकता है।

पुरोहित ने कहा—मैं दो लाख रुपये जुर्माना करता हूँ। अभी देना होगा।

राजा ने कुछ देर तक सोच कर कहा, "तथास्तु।" खजानची को बुला कर उन्होंने दो लाख रुपये देने का हुक्म दे दिया। सन्तरी लोग रघुपति को बाहर ले गये।

रघुपति के चले जाने पर नक्षत्रराय की ओर देख कर राजा कड़क कर बोले—नक्षत्रराय, तुम अपने अपराध को स्वीकार करते हो या नहीं ?

नक्षत्रराय ने कहा—"महाराज मैं अपराधी हूँ। मुझे क्षमा कीजिए।" वे दौड़ कर राजा के पैरों में लिपट गये।

महाराज घबरा गये। कुछ देर तक कुछ न बोल सके। आखिर अपने को सँभाल कर बोले—नक्षत्रराय, उठो। मेरी बात सुनो। मैं क्षमा करनेवाला कौन ? मैं अपने नियम का आप पाबन्द हूँ। जैसे अपराधी बँधा होता है वैसे ही न्याय-कर्त्ता भी बँधा रहता है। एकही अपराध में एक आदमी को

दण्ड दूँगा और एक को क्षमा प्रदान करूँगा, यह क्योंकर हो सकता है ? तुम्हीं इसका विचार करो।

सभासद् बोल उठे—महाराज, नक्षत्रराय आपके भाई हैं। आप भाई को क्षमा कीजिए।

राजा कुछ कड़ी आवाज करके बोले—तुम लोग चुप रहो, जितनी देर तक मैं इस आसन पर बैठा हूँ उतनी देर तक मैं न किसी का भाई हूँ, न किसी का मित्र।

सभासद् लोग चुप हो रहे। राजा कहने लगे—तुम लोग सुन चुके हो—मेरे राज्य के लिए यही नियम हुआ है कि जो व्यक्ति देवता के नाम पर जीवबलि देगा या देने का उद्योग करेगा उसको देश-निकाले का दण्ड दिया जायगा। कल शाम के वक्त पुरोहित के साथ षड्यन्त्र करके नक्षत्रराय बलि देने की नीयत से एक बालक को चुरा ले गये थे। इस क़ुसूर के साबित हो जाने पर मैंने इनके लिए आठ वर्ष देश-निकाले का दण्ड निर्धारित किया है।

जब सन्तरी लोग नक्षत्रराय को ले जाने पर उद्यत हुए तब राजा ने आसन से नीचे उतर कर नक्षत्रराय को गले लगाया और रुद्ध-कण्ठ से कहा—प्यारे, केवल तुम्हीं को सज़ा नहीं हुई किन्तु मुझे भी सजा हुई। न मालूम पूर्व जन्म में मैंने क्या भूल की थी। जितने दिन तुम अपने भाई-बन्धुओं से अलग रहो उतने दिन देवता तुम्हारे साथ साथ फिरें और तुम्हारा कल्याण करें।

बात की बात में यह खबर सर्वत्र फैल गई । अन्दर महल से रोने-पीटने की आवाज आने लगी । राजा एक कोठरी में किवाड बन्द करके बैठ रहे और हाथ जोड कर ईश्वर से प्रार्थना करने लगे—प्रभो, यदि मैं कभी अपराध करूँ तो मुझे क्षमा न करो, मुझ पर जरा भी दया न दिखाओ, मुझको मेरे पाप की सजा दो । पाप करके दण्ड का भार उठाया जा सकता है किन्तु क्षमा का भार नहीं उठाया जा सकता ।

राजा के मन मे नक्षत्रराय पर दूना प्रेम जागृत हो उठा । नक्षत्र-राय के बाल्यकाल का मुँह उन्हें याद आने लगा । नक्षत्रराय ने जो खेल खेले हैं, जो बातें कहीं और काम किये हैं सो सब एक एक करके उनके मन मे आने लगे । एक एक दिन, एक एक रात—अपने सूर्य के प्रकाश मे, अपने तारागणों से भरे आकाश मे—बालक नक्षत्रराय को लेकर उनके सम्मुख उदय होने लगी । राजा की आँखों से आँसू बहने लगे ।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

जब राज्य से बाहर होने के लिए रघुपति तैयार हुआ तब सिपाहियों ने पूछा—आप किस तरफ जायँगे ? रघुपति ने कहा—पच्छिम की ओर ।

नौ दिन तक बराबर पच्छिम की ओर जाने के बाद सिपाही लोग ढाका शहर के आस पास पहुँचे । तब वे लोग रघुपति को वहाँ छोड कर राजधानी लौट आये ।

गये थे । जब सुना कि मुग़लों की फ़ौज चली गई तब यहाँ आये हैं ।"

रघुपति ने पूछा—मुगलों की सेना किस तरफ गई है ?

उसने कहा—विजयगढ की तरफ । अब वे लोग विजयगढ के जगल मे पहुँचे होगे ।

रघुपति और कुछ बात न करके वहाँ से तुरन्त चला गया ।

बीसवाँ परिच्छेद

विजयगढ का विस्तृत वन चोर डाकुओ का अड्डा है । जगल के बीच होकर जो सडक गई है उसके दोनो तरफ मनुष्यों की कितनी ही ठठरियाँ पड़ी हैं, जिन पर जगली फूल फूल रहे हैं । और कुछ चिह्न देखने मे नही आता । जगल के भीतर अधिकतर बड, बबूल और नीम के पेड हैं । सैकडो तरह की लतायें और पौदे हैं । बीच बीच मे कोई कोई गढा तालाब सा दिखाई देता है । निरन्तर पत्ते पडने और सडने के कारण उस गढे का पानी बिलकुल हरा हो गया है । छोटी छोटी कितनी ही पगडडियाँ इधर उधर साँप की तरह टेढी मेढी हो कर घने जंगल मे चली गई हैं । पेडों की डाल डाल पर झुड के झुड वानर बैठे हैं । बड के पेड की डालो से सैकडों बट-जटाये तथा वानरो की पूँछें झूल रही हैं । टूटे फूटे मन्दिर के आँगन में हरसिगार के वृक्ष उजले उजले फूलों से तथा वानरो के दाँतों

की चमक से बिलकुल छिप गये हैं। शाम के वक्त बडे बडे भ्रखाड पेडों पर अगणित तोतों की चे चें से घने जगल का घोर अन्धकार मानो खण्ड खण्ड होकर फटा जा रहा है। आज इस विस्तृत वन में प्राय बीस हजार सेना घुस पडी है। डालो, पत्तो, लताओ और पौदो से घिरा हुआ यह जगल बडा गोलाकार मालूम होता है मानों तीखे नख चोंचवाले बाज के समान उस सेना का एक-मात्र घोंसला हो। एक साथ इतनी सेना का आगम देख कर अगणित कौए कांव कांव करते हुए दल बाँध कर आसमान में घूमने लगे। डाल पर आकर बैठने का उन्हे साहस नहीं होता। किसी तरह की गडबड न करने की सिपहसालार की सख्त ताकीद थी। सैनिकगण सारे दिन सफ़र करके, शाम के वक्त जगल में आकर, सूखी लकडियाँ बटोर कर रसोई बना रहे हैं और आपस में चुपके चुपके बातचीत कर रहे हैं। उन लोगो की गुनगुनाहट से सारा जगल गनगना गया है। इसी से सन्ध्या समय में भी झिल्लियो की झनकार सुनाई नहीं देती। पेडो से तनो से बँधे हुए घोडे रह रह कर टापों से धूल उडा रहे हैं और हिनहिनाते हैं, जिससे सारा जगल कॉप उठता है। टूटे मन्दिर के पास खाली जगह मे शाहशुजा का खेमा खडा है। और सब लोग पेडों के नीचे ही ठहरे हैं।

लगातार दिन भर चल कर रघुपति ने जगल के भीतर पैर रक्खा। अब रात हो चुकी है। अधिकाश सैनिक गाढी नींद में सो रहे है। थोडी सी सेना चुपचाप पहरा दे रही है। बीच

बीच में किसी किसी जगह आग बल रही है। जा
पडता है, मानो अन्धकार ने बडे कष्ट से अपनी नींद भरी ला
आँखें खोली हैं। वन में पाँव रखते ही मानो रघुपति ने बीस
हजार सेना के साँस लेने का शब्द सुना। हजारों दरख
अपनी शाखाओं को फैला कर जगल का पहरा दे रहे हैं
उल्लू पक्षी अपने तुरत के जने बच्चे के ऊपर जिस तर
छाती रख कर और पख पसार कर बैठता है उस
तरह जगल के बाहरवाली विशाल रात्रि जगल के भीतर
वाली रात को दबाये और अपने डैनों से छिपाये चुपचा
बैठी है। जगल के भीतरवाली रात मुँह छिपा कर सो रही
है और जगल के बाहरवाली रात सिर उठा कर जाग रही
है। रघुपति उस रात को जगल के बाहरी हिस्से में सो रहा।

अचेत सोते हुए रघुपति को सवेरे के वक्त किसी ने
आकर एकाएक झँझोड दिया। रघुपति हडबडा कर उठ
बैठा। देखा कि पगडी बाँधे लम्बी दाढीवाले कई मुगल
सिपाही अपनी बोली मे उससे कुछ कह रहे हैं। जिसे सुन
कर उसने अनुमान किया कि वे लोग गाली दे रहे हैं। तब
उसने भी बँगला मे उन लोगों को साला कह कर अपने
सम्बन्ध का परिचय दिया। वे लोग रघुपति के साथ खींचा-
तानी करने लगे। रघुपति ने कहा—"तुम लोगों ने क्या ठट्ठा
समझ लिया है ?" हालाँ कि उन लोगों के आचरण से ठट्ठे का
कोई लक्षण प्रकट नहीं हुआ। जगल के भीतर से वे लोग

उसे बेख़ौफ़ खींच कर ले जाने लगे। रघुपति विशेष रूप से अपनी अप्रसन्नता प्रकट करके बोला—"खींचातानी क्यों कर रहे हो। मैं ख़ुद चलता हूँ। नहीं तो मैं इतनी दूर आता ही क्यों?" सैनिक हँसने लगे और उसकी बँगला बोली का अनुकरण करने लगे। धीरे धीरे उसके चारों ओर अधिक सिपाही जमा हो गये। उसके सम्बन्ध में भारी कोलाहल मच गया। उसकी दुर्दशा का अन्त न रहा। एक सिपाही ने गिलहरी की पूँछ पकड कर उसको रघुपति के मुँडे हुए माथे पर यह देखने के लिए रख दिया कि उस मुंडित मस्तक को फल के धोखे वह खाती है या नहीं। एक सिपाही रघुपति की नाक के पास एक मोटे बेंत को टेढा कर साथ साथ चला, उस झुके हुए बेंत को छोड देने से रघुपति के मुँह पर से नाक की मर्यादा बिलकुल न रहने की सम्भावना थी। सैनिकों की हँसी से सारा जंगल गूँजने लगा। आज दिन को दोपहर के समय युद्ध करना होगा। इसी से सवेरे दिल बहलाने के लिए रघुपति को उन लोगों ने एक तमाशा बना डाला। तमाशे के सभी दृश्य ख़तम हो जाने पर सेना ब्राह्मण को शुजा के ख़ेमे में ले गई। शुजा को देख कर रघुपति ने सलाम नहीं किया। वह देवता और ब्राह्मणों के सिवा और किसी के सामने सिर न नवाता था। इसी से अपने सिर को उन्नत करके खड़ा रहा। हाथ उठा कर कहा—शाहजहाँ बादशाह की जय हो।

शुजा शराब का प्याला हाथ में लिये बैठे थे। सुस्ती

से भरी हुई आवाज में नफ़रत के साथ कहा—क्या मामला है ?

सैनिकों ने कहा—हुजर, यह दुश्मनों का जासूस हम लोगों का भेद लेने के लिए आया था। हम लोगों ने इसे गिरफ़ार कर लिया है।

शुजा ने कहा—अच्छा, अच्छा, वह बेचारा देखने के लिए आया है। उसे सब चीजे अच्छी तरह दिखला कर छोड दो। अपने मुल्क में जाकर लोगों से सब हाल कहेगा। रघुपति ने टूटी फूटी हिन्दी में कहा—हुजूर का मातहद मे हम कोई दु काम करने को अर्ज करता हूँ।

शुजा ने आलस्य के साथ हाथ हिला कर शीघ्र चले जाने का इशारा किया। कहा—"ओफ, बडी गरमी है।" जो पखा झलता था वह दुगुना जोर लगा कर पखा झलने लगा।

दारा ने अपने बेटे सुलेमान को जयसिंह के नेतृत्व में, शुजा का आक्रमण रोकने के लिए भेजा है। शुजा को खबर मिली है कि वह बृहत् सैन्यदल नजदीक आ पहुँचा है। इसी से वे विजयगढ के किले पर दखल करके वहाँ फौज एकत्र करने के लिए आतुर हो पडे हैं। शुजा के हाथ मे किला और सरकारी खजाना सौंप देने का प्रस्ताव लेकर विजयगढ के महाराज विक्रम-सिंह के पास दूत गया था। विक्रमसिंह ने उस दूत की जबानी कहला भेजा—मैं केवल दिल्लीपति बादशाह शाहजहाँ को तथा

ससार के स्वामी शङ्कर को जानता हूँ । शुजा कौन हैं ? मैं उन्हें नहीं जानता ।

शुजा रुकती जबान से बोले—ओफ । बडा बे अदब । फिर नाहक़ लडाई करनी होगी ।

रघुपति ने इन बातो को सुन लिया। सेना के हाथ से छुटते ही वह विजयगढ की तरफ चला ।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

विजयगढ पहाड के ऊपर है । वहाँ का जगल किले के आस पास जाकर खतम हुआ है । जगल से बाहर होकर रघुपति ने एकाएक देखा कि पत्थरो का बना हुआ ऊँचा किला मानो काले आसमान मे तन कर खडा है । जिस प्रकार जगल अपने हजारों वृक्ष-समूहो से ढका रहता है । उसी प्रकार किला भी अपने पत्थरों के बीच आप ही बन्द है । जगल सावधान है तो किला भी सतर्क है । जगल बाघ की तरह छिप कर पूँछ दबाये बैठा है तो किला सिह की तरह अपने अयालो को फैला कर और गर्दन टेढी किये खडा है । जगल धरती मे कान लगा कर सुन रहा है । किला आसमान में सिर उठा कर देख रहा है ।

जगल से रघुपति के निकलते ही किले की दीवाल के ऊपर वाले सैनिक चमक उठे । तुरही बजने लगी । किला मानों

सिंह की तरह गरज कर, अपने नख दाँतो को निकाल, और भौंहें चढा, तन कर खडा हो गया ।

रघुपति जनेऊ दिखा कर और हाथ उठा कर इशारा करने लगे । सिपाही लोग सावधान होकर खडे रहे ।

रघुपति जब किले की दीवाल के पास गये तब सिपाहियों ने पूछा—तुम कौन हो ?

रघुपति ने कहा—मैं अतिथि ब्राह्मण हूँ ।

किले के मालिक महाराज विक्रमसिंह बड़े धार्मिक हैं। देवता, ब्राह्मण और अतिथियो की सेवा में वे सदा तत्पर रहते हैं। जनेऊ रहने से फिर किले के अन्दर घुसने के लिए और किसी परिचय की आवश्यकता न थी । किन्तु आज लडाई के दिन क्या करना चाहिए, इसका सैनिक लोग कुछ ठीक न कर सके। रघुपति ने कहा—तुम लोग यदि मुझे आश्रय न दोगे तो मुसलमानो के हाथ से मेरी मृत्यु होगी ।

विक्रमसिंह के कानो में जब यह बात पडी तब उन्होने किले के अन्दर ब्राह्मण को आश्रय देने के लिए आज्ञा दी । किले की दीवाल पर से एक सीढी नीचे लटका दी गई । रघुपति उसी के सहारे किले के अन्दर दाखिल हुआ ।

किले के अन्दर युद्ध की प्रतीक्षा से सभी लोग व्यग्र हो रहे हैं । ब्राह्मण के सत्कार का भार खुद बूढे काका साहब ने लिया । उनका असल नाम है खड्गसिंह, परन्तु उन्हे कोई काका साहब कहता है और कोई सूबेदार साहब । लोग उन्हें इस

तरह क्यों कहा करते हैं, इसका कोई कारण नहीं। इस ससार मे उनके एक भी भतीजा नहीं, भाई नहीं, उन्हें काका होने का कोई हक नहीं और आगे होने की कोई सम्भावना भी नहीं । उनके भतीजों की जितनी सख्या है, उसकी अपेक्षा उनकी सूबेदारी अधिक नहीं है । अर्थात् उनके अधिकार में एक भी सूबा नहीं। किन्तु आज तक किसी ने उनके ओहदे की निसबत कुछ उज्र या सन्देह नहीं किया। जो लोग विना भतीजे के चचा और विना सूबे के सूबेदार कहलाते हैं उन्हें पदच्युत होने का कोई डर नहीं। अनित्यता के साथ ससार का और चञ्चलता के साथ लक्ष्मी का जो सम्बन्ध है वही उन ओहदो के साथ उनका है। जब कारण नहीं तब कार्य कैसा ?

काका साहब ने "वाह वाह! ये तो यथार्थ मे ब्राह्मण हैं" कह कर भक्तिभाव से प्रणाम किया। रघुपति का स्वरूप दीप-शिखा की तरह देदीप्यमान था, जिसे देख कर पतङ्ग के सदृश लोग एकाएक मुग्ध हो जाते थे।

काका साहब ने ससार की वर्तमान समय की सोचनीय अवस्था पर खिन्न होते हुए कहा—देवताजी, तब के से ब्राह्मण आज कल कितने मिलते हैं ?

रघुपति—बहुत थोड़े।

काका साहब—पहले ब्राह्मणो के मुँह मे आग रहती थी अब सब आग पेट के आश्रित हुई है।

रघुपति—सो भी क्या पूर्ववत् है।

काका साहब ने सिर हिला कर कहा—ठीक बात। अगस्त्य मुनि जिस प्रमाण से पानी पी गये थे उसी अन्दाज से यदि भोजन करते तो ? इस बात को आप एक बार गौर करके देखिए।

रघुपति ने कहा—और भी कुछ उदाहरण हैं ?

काका साहब—हाँ, हैं क्यों नहीं। जह्नु मुनि की प्यास की बात सुनी जाती है, पर उनकी भूक की बात कहीं लिखी नहीं। अनुमान करके देखिए। हड खाने ही से भूख कम लगती है सो बात नहीं। वे प्रतिदिन कितनी हड़ें खाते थे, इसका हिसाब होता तो कुछ समझ मे आता।

ब्राह्मणों की महिमा स्मरण करके रघुपति गम्भीर स्वर में बोला—नहीं साहब, भोजन के ऊपर उन लोगों का विशेष ध्यान नहीं था।

काका साहब ने दाँतो मे जीभ दबा कर कहा—राम, राम, यह आप क्या कहते हैं। उन लोगों का जठरानल बड़ा ही प्रबल था, इसका पूरा प्रमाण है। इसे क्यों नहीं सोचते ? समय के हेर फेर से सभी आग बुझ गई। होम की आग भी नहीं जलती। परन्तु रघुपति ने कुछ दुखी होकर कहा—"होम की आग अब क्योंकर जलेगी ? देश मे घी रहा नहीं, म्लेच्छ लोग गायो को खाये जाते हैं। अब होम की सामग्री मिलती है कहाँ ? होम की आग न जलने से ब्राह्मणों का तेज अब

कितने दिनो तक ठहरेगा ?" यह कह कर रघुपति अपनी जलानेवाली गुप्त शक्ति का पूरे तौर से अनुभव करने लगा।

काका साहब ने कहा—महाशय, आपने ठीक कहा है। जो गायें आज कल मरती हैं उन्होंने मनुष्य-योनि में आकर जन्म लेना शुरू किया है। तब, उनके पास से घी मिलने की आशा कैसे की जाय ? इसी से किसी के दिमाग में ताकत नहीं। आपका आना कहाँ से होता है ?

रघुपति—त्रिपुरा राजधानी से।

विजयगढ के अतिरिक्त हिन्दुस्थान के भूगोल (नकशा) अथवा इतिहास के सम्बन्ध की बाते काका साहब को थोडी ही मालूम थीं। विजयगढ के अलावा हिन्दुस्तान में और कुछ बातें जानने योग्य हैं, उस पर भी उनको विश्वास नहीं। बिलकुल अनुमान के भरोसे पर बोले—अहा, त्रिपुरा के राजा तो बहुत बडे हैं।

रघुपति ने उसका पूर्णरूप से अनुमोदन किया।

काका साहब—वहाँ आप क्या करते हैं ?

रघुपति—मैं त्रिपुरा का राजपुरोहित हूँ।

काका साहब आँख मूँद कर और सिर हिला कर बोले—"अहा !" रघुपति के ऊपर उनकी भक्ति बहुत अधिक बढ गई। फिर पूछा—"आपका यहाँ किस लिए आना हुआ ?"

रघुपति—"तीर्थ-यात्रा के लिए।"

धम से आवाज हुई। दुश्मनो ने किले पर आक्रमण कर दिया।

काका साहब ने हँस कर और आँखे दबा कर कहा—"कुछ नहीं, ढेले छोड रहे हैं ।" विजयगढ के ऊपर काका साहब को जितना दृढ विश्वास था उतना मजबूत विजयगढ का पत्थर नहीं था । जहाँ कोई परदेशी यात्री किले के अन्दर आया वहाँ उसके ऊपर काका साहब अपना पूरा अधिकार जमा बैठते थे और विजयगढ की तारीफ उसके मन मे जमा देते थे । त्रिपुरा राजधानी से रघुपति आये हैं । ससार में ऐसा अतिथि मिलना कठिन है । इसी से काका साहब मारे खुशी के फूले नहीं समाते । रघुपति के साथ वे विजयगढ के प्राचीनकालिक सार-विषयो पर समालोचना करने लगे । उन्होंने कहा—"ब्रह्मा का कोप और विजयगढ़ का किला दोनो प्राय एक ही समय मे उत्पन्न हुए हैं । और, मनु महाराज के बाद से ही महाराज विक्रम-सिह के पूर्व पुरुष इस किले का उपभोग करते आते हैं, इस विषय में सन्देह हो ही नहीं सकता ।" इस किले को महादेव का क्या वर है और इस किले मे सहस्रार्जुन किस तरह कैद हुए थे, ये बाते भी रघुपति के आगे छिपी न रहीं ।

शाम के वक्त खबर आई कि शत्रुदल किले की कुछ हानि नहीं कर सका । उन लोगों ने तोपें लगाई थीं, पर तोपों के गोले किले तक नहीं पहुँच सके । काका साहब ने हँस कर रघुपति की तरफ़ देखा । उसका अभिप्राय यही था कि किले के प्रति जो शिवजी का अक्षय वर है, उसका ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण और हो ही क्या सकता है ? जान पडता है, नन्दी स्वय आकर

तोप के गोले रोकते गये हैं। इन गोलो से कैलास पर गणेश और कार्तिकेय गोली खेलेंगे।

बाईसवाँ परिच्छेद

शाह शुजा को किसी तरह क़िला हस्तगत करा देना ही रघुपति का अभिप्राय था। उसने जब सुना कि शुजा क़िला दखल करने के लिए मुस्तैद हैं, तब अपने मन मे सोचा कि मित्र-भाव से क़िले के भीतर प्रवेश करके किस प्रकार हम शुजा को क़िले के आक्रमण मे सहायता पहुँचावेंगे। किन्तु ब्राह्मण बेचारे लडाई का हाल क्या जानें। क्या करने से शुजा की सहायता हो सकती है, इसका वह निरूपण न कर सका।

दूसरे दिन फिर लडाई शुरू हुई। शत्रु की सेना ने बारूद के द्वारा क़िले की दीवार का कुछ हिस्सा उडा दिया, किन्तु ऊपर से लगातार गोले बरसने के कारण वे लोग क़िले के अन्दर न जा सके। टूटा अंश बात की बात मे जोड कर पूरा कर दिया गया। आज छोटे छिटके क़िले के अन्दर गोले आ आकर गिरने लगे। क़िले के सैनिकों में से दो चार हताहत भी हुए।

"महाशय, कुछ डर नहीं, यह केवल कुतूहल-मात्र है।" यह कह कर काका साहब रघुपति को साथ लेकर क़िले के चारों तरफ दिखलाते हुए घूमने लगे। कहाँ अस्त्र रक्खे जाते हैं, कहाँ भण्डार है, कहाँ घायल सेना की दवा होती है, कहाँ क़ैदख़ाना

है और कहाँ दरबार होता है ये सब जगह तमक तमक कर दिखलाने लगे और बार बार रघुपति के मुँह की तरफ देखने लगे ।

रघुपति ने कहा—वाह साहब, यहाँ के कारखाने तो तारीफ के लायक हैं। त्रिपुरा का किला इसकी बराबरी नहीं कर सकता, किन्तु त्रिपुरा के किले में छिप कर भागने के लिए एक बडा ही विचित्र सुरङ्ग का रास्ता है, इस किले में तो वैसा कोई रास्ता नहीं देख पडता ।

काका साहब कुछ बोलना चाहते थे परन्तु एकाएक अपने को सँभाल कर बोले—नहीं, इस किले मे वैसा कोई रास्ता नहीं है ।

रघुपति ने बडा ही आश्चर्य प्रकट करके कहा—इतने वडे किले मे एक भी सुरङ्ग नहीं !

काका साहब कुछ ठिठक कर बोले—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। सुरङ्ग जरूर होगी। यह दूसरी बात है कि हमें मालूम न हो ।

रघुपति ने हँस कर कहा—तब तो नहीं के बराबर ही है। जब आपही को मालूम नहीं तब और किसको मालूम होगा ?

काका साहब ने कुछ देर तक तो बडा गम्भीर भाव धारण किया, पर कुछ देर के बाद हरे राम राम कह कर चुटकी बजाते हुए जँभाई ली । तदनन्तर डाढी और मूँछों पर दो एक बार हाथ फेर कर एकाएक बोले—महाशय, आप पूजा

पाठ कर लीजिए। आपको बताने में कोई हर्ज नहीं। क़िले के अन्दर आने और जाने के दो गुप्त मार्ग हैं किन्तु उन्हें बाहर के लोगों को दिखलाना मना है।

रघुपति ने कुछ सन्देह के स्वर से कहा—हाँ, होगा।

काका साहब ने देखा कि यह हमारा ही दोष है। एक बार "नहीं है" और एक बार "है" कहने से स्वभावत लोगों को सन्देह हो सकता है। एक विदेशी की दृष्टि मे त्रिपुरा-गढ के मुकाबले मे विजयगढ का क़िला किसी अश मे न्यून होजाय, यह काका साहब को सह्य नहीं था। उन्होंने कहा—महाशय, मैं जानता हूँ कि आपका त्रिपुरा-यहाँ से बहुत दूर है और आप ब्राह्मण हैं। पूजा पाठ करना ही आपका एक-मात्र कार्य है। आपके द्वारा इन बातों के प्रकट होने की कोई सम्भावना नहीं।

रघुपति ने कहा—साहब, मुझको इससे क्या प्रयोजन। अगर आपको शक हो तो उन बातों को रहने दीजिए। मैं ब्राह्मण का बालक हूँ। मुझको क़िले की बातो से क्या मतलब।

काका साहब दातो मे जीभ दबा कर बोले—अरे राम! राम! आपसे सन्देह किस बात का। चलिए, आपको एक बार दिखला दें।

इस तरफ क़िले के बाहर शुजा की सेना में एकाएक हल्ला मच गया। जगल के भीतर शुजा का खेमा था। सुलेमान और जयसिंह की सेना ने आकर एकाएक उनको

गिरफ्तार कर लिया। फिर वह सेना छिपे तौर से किले के ऊपर चढ़ाई करनेवाली शुजा की फौज पर टूट पडी। शुजा की सेना बिना ही युद्ध किये बीस तोपे छोड कर भाग गई।

किले के अन्दर धूम धाम होने लगी। विक्रमसिंह के पास ज्यों ही सुलेमान का दूत पहुँचा त्योंही उन्होंने किले का फाटक खोल दिया। वे स्वय जाकर सुलेमान और राजा जयसिंह को आगे से ले आये। दिल्ली के बादशाह की सेना और हाथी-घोडो से किला भर गया। विजय पताका फहराने लगी। शख और जीत के बाजे बजने लगे।

काका साहब की सफेद मूँछों के नीचे स्वच्छ हँसी पूर्णरूप से विकसित हो उठी।

तेईसवाँ परिच्छेद

काका साहब के लिए आज क्या ही आनन्द का दिन है। आज दिल्लीपति के राजपूत सैनिक विजयगढ के पाहुने हुए हैं। परमप्रतापी शाह शुजा आज विजयगढ के कैदी बने हैं। सहस्रार्जुन के बाद विजयगढ को ऐसा कैदी न मिला था। सहस्रार्जुन की बन्धन-दशा याद कर और लबी साँस ले करके काका साहब ने सुचेतसिंह राजपूत से कहा—ध्यान देकर देखो, हजार हाथो में हथकडी पहनाते वक्त कितना आयोजन करना पडा होगा। कलियुग का उदय होने से अब धूम धाम

नाम-मात्र की रह गई है । राजा के बेटे ही क्यों न हो, दो हाथो से अधिक हाथवाले लोग ढूँढने से भी कहीं नहीं मिलते । दो हाथों को बाँध कर क्या कुछ सुख नहीं ? कुछ विनोद नहीं ?

सुचेतसिंह ने हँस कर और अपने हाथो की तरफ देख कर कहा—ये दोनो हाथ ही यथेष्ट हैं ।

काका साहब कुछ सोच कर बोले—हाँ, यह ठीक है । उस जमाने में काम बहुत था । इस जमाने में काम इतना कम हो गया है कि इन दोनों हाथों की ही कुछ कैफियत देते नहीं बनती । अधिक हाथ होने से यही कि और भी मूँछों पर ताव देता ।

आज काका साहब के वेप-विन्यास मे कोई कमी न थी । डाढी के पके हुए बालों को ठोढी के नीचे से दो हिस्सों में बाँट कर दोनो कानो मे लपेट लिया है । मूँछ को ऐठ कर दोनो तरफ कान के पास तक पहुँचा दिया है । सिर पर टेढी पगडी है । कमर में टेढी तलवार लटक रही है । कामदार जूते की नोक ऐंठी हुई, सींग की तरह, टेढी होकर ऊपर को उठी हुई है । आज काका साहब के चलने का ढग ऐसा जान पडता है जैसे विजयगढ का महत्त्व उन्हीं के सर्वाङ्ग में लहरा रहा है । आज इन समझदार लोगों के निकट विजयगढ की महिमा प्रमाणित हो जायगी । इस खुशी के मारे उनको न खाने की सुधि है न सोने की ।

सुचेतसिंह को साथ लेकर उन्होंने प्राय दिन भर किले की देख-भाल की। जिस जगह सुचेतसिंह किसी प्रकार का आश्चर्य प्रकट नहीं करते थे उस जगह काका साहब स्वय "वाह, वाह" कह कर अपनी उमङ्ग राजपूत वीर के हृदय मे सचारित करने की कोशिश करते थे। विशेष करके उन्हे किले की दीवार के गठन की निसबत अधिकतर श्रम करना पडा। जिस तरह किले की दीवार खडी है, उससे भी अधिक स्थिर भाव से सुचेतसिंह खडे हैं। उनके चेहरे पर किसी प्रकार का भाव प्रकट नहीं। काका साहब घूम फिर कर उन्हे एक बार दीवार की बाई तरफ, एक बार दाहिनी तरफ, एक बार ऊपर और एक बार नीचे लाने ले जाने लगे और बार बार कहने लगे—"क्या कहना है।" परन्तु वे सुचेतसिंह के हृदयरूपी दृढ किले पर कुछ भी अधिकार न कर सके। आखिर सन्ध्या समय थक कर सुचेतसिंह बोल उठे—मैंने भरतपुर का किला देखा है, वैसा और नजर नहीं आता।

काका साहब किसी के साथ विवाद नहीं करते। वे बहुत उदास होकर बोले—जरूर, जरूर, यह बात ठीक ही कहते हो।

उन्होंने लम्बी साँस लेकर किले के सम्बन्ध मे बातें करना छोड दिया। विक्रमसिंह के पूर्व पुरुष दुर्गासिंह की बात छेडी। उन्होंने कहा—दुर्गासिंह के तीन बेटे थे। उनके सबसे छोटे बेटे चित्रसिंह को एक विचित्र अभ्यास था।

वे प्रतिदिन अन्दाजन आध सेर छुहारा दूध मे औटा कर खाते थे । उनका शरीर भी वैसा ही बलिष्ट था । अच्छा, तुम जो भरतपुर के क़िले की बात कहते हो सो किला बहुत बडा जरूर होगा, लेकिन ब्रह्मवैवर्तपुराण मे तो उसका कहीं जिक्र नहीं है ।

सुचेतसिंह ने हँस कर कहा—उसके लिए काम में कोई बाधा नहीं होती ।

काका साहब हँस कर बोले—हा हा हा, सो ठीक है, सो ठीक है । तुम क्या जानते हो, त्रिपुरा का किला भी कुछ साधारण क़िला नहीं । लेकिन विजयगढ के मुकाबले

सुचेतसिंह—यह त्रिपुरा किस प्रदेश मे है ?

काका साहब—वह बहुत बडा देश है । इतनी बातों का प्रयोजन क्या । वहाँ के राजपुरोहित अतिथि-रूप से हमारे किले मे आकर ठहरे हैं । उनके मुँह से तुम सब सुन लेना ।

परन्तु आज वे ब्राह्मण ढूँढने से भी कहीं न मिले । काका साहब का दिल उनके लिए रोने लगा । वे मन ही मन कहने लगे—"इन देहाती राजपूतों की अपेक्षा वह ब्राह्मण कहीं अच्छा था ।" वे सुचेतसिंह के निकट सैकड़ों मुँह से रघुपति की प्रशसा करने लगे तथा विजयगढ के विषय में रघुपति की क्या राय थी, उसे भी उन्होंने प्रकट किया ।

चौबीसवाँ परिच्छेद

काका साहब के हाथ से छुट कर सुचेतसिंह को और कोई ज्यादा मिहनत उठानी नहीं पड़ी। कल सुबह कैदी (शुजा) के साथ बादशाही फौजो के जाने का दिन मुकर्रर हुआ है। सेनायें सफर का सामान ठीक करने लगी। कैदखाने में शाह-शुजा पूरे तौर से नाराज होकर मन ही मन कह रहे हैं—ये लोग कैसे वे अदब हैं। खेमे से मेरी गुडगुडी ला दें सो भी इन के मन मे विचार न हुआ।

विजयगढ के पहाड के नीचे एक गहरा नाला है। उसी नाले की धार मे एक जगह बिजली का जला एक पीपल का तना खडा है। उसी तने के पास गहरी रात में रघुपति गोता लगा कर गायब हो गया।

गुप्त रीति से किले में घुसने के लिए जो सुरङ्ग का रास्ता है, उसका प्रवेश-द्वार इस नाले की गहरी तलहटी में ही है। उस रास्ते से जाकर, सुरङ्ग की अन्तिम जगह पहुँच कर, नीचे से जोर से धक्का लगाने के साथ ही एक पत्थर का तख्ता ऊपर उठ जाता है। किन्तु ऊपर से कोई तख्ता उठाना चाहे तो वह किसी तरह उठाया नहीं जा सकता। इसी से, जो लोग किले के अन्दर हैं वे उस रास्ते बाहर नहीं जा सकते। शुजा कारागार मे पलँग के ऊपर सोये हैं। पलँग के सिवा घर में और कोई बिस्तर नहीं है। एक चिराग बल रहा है। एकाएक घर मे सुरङ्ग का मुँह खुल पडा। रघुपति धीरे धीरे सिर उठा कर

नीचे से ऊपर आया। उसका सारा शरीर भीगा है। उसके गीले कपडे से चू चूकर पानी बहा जा रहा है। रघुपति ने धीरे से शुजा की देह पर हाथ रक्खा। शुजा चौक कर और आँखे मल कर कुछ देर बैठे रहे, फिर अलसाये हुए स्वर मे बोले—क्या बखेडा है? ये लोग क्या मुझको रात मे भी न सोने देंगे। तुम लोगों के व्यवहार से मैं अचम्भे में हूँ।

रघुपति ने नरमी से कहा—शाहजादा साहब, चलिए, मैं वही ब्राह्मण हूँ। याद करके मुझे देखिए। आइन्दा भी मेरी याद रखिएगा।

दूसरे दिन सुबह बादशाही फौज जाने को तैयार हुई। शुजा को नींद से जगाने के लिए राजा जयसिंह स्वय कैदखाने मे गये। देखा—शुजा तब भी बिछौने से नहीं उठे हैं। पास जाकर स्पर्श किया—शुजा नहीं हैं, उनके कपडे पडे हैं। शुजा का पता नहीं। घर के बीच मे सुरङ्ग का मुँह खुला है। उसका पत्थर का ढॅकना अलग पडा है।

कैदी के भागने की बात किले में फैल गई। खोजने के लिए चारो तरफ़ लोग दौडे। राजा विक्रमसिंह का सिर नीचा हो गया। कैदी किस प्रकार भागा, उसके विचारार्थ एक दरबार हुआ।

काका साहब की वह आनन्द-सहित गरवीली चाल कहाँ चली गई। वे पागल की तरह, "ब्राह्मण कहाँ है, ब्राह्मण कहाँ

है" कह कर चारो तरफ ढूँढते फिरते हैं। ब्राह्मण का कहीं पता नहीं।

काका साहब माथे पर से पगडी उतार कर कुछ देर तक माथे पर हाथ रक्खे बैठ रहे। सुचेतसिंह ने पास आकर कहा—"काका साहब, कैसी विचित्र घटना है। यह सब भूत के व्यापार तो नहीं हैं?" काका साहब उदासीन भाव से गर्दन हिला कर बोले—नहीं सुचेतसिंह, यह भूत का काम नहीं है। यह एक अत्यन्त बुद्धिहीन बूढे का और एक विश्वासघाती पामर का काम है।

सुचेतसिंह ने विस्मित होकर कहा—यदि तुम उसको जानते हो तो उसे पकडवा क्यो नहीं देते?

काका साहब ने कहा—"उनमे एक तो भाग गया है और एक को गिरफ़ार कर राज-दरबार मे लिये जाता हूँ।" इसके बाद पगडी पहन कर उन्होंने दरबारी कपडे पहन लिये।

उस समय दरबार मे पहरेदारों का इजहार लिया जा रहा था। काका साहब सिर झुकाये दरबार में हाजिर हुए। वे विक्रमसिंह के पैरो के पास तलवार रख कर बोले—महाराज, मुझको कैद करने का हुक्म दिया जाय। अपराधी मैं हूँ।

राजा ने विस्मित होकर कहा—काका साहब क्या मामला है?

काका साहब—वही ब्राह्मण । यह सारा काम उसी बङ्गाली ब्राह्मण का है ।

राजा जयसिंह ने पूछा—तुम कौन हो ?

काका साहब—मैं विजयगढ का बूढा काका साहब हूँ ।

जयसिंह—तुमने क्या किया है ?

काका साहब—मैंने विजयगढ की मैत्री भङ्ग कर विश्वास-घाती का काम किया है । मैंने निपट मूर्ख की तरह विश्वास करके एक बङ्गाली ब्राह्मण से सुरङ्ग के रास्ते की बात कह दी थी ।

विक्रमसिंह एकाएक जल कर बोल उठे—खड्गसिंह ।

काका साहब चौंक उठे—वे प्राय भूल गये थे कि हमारा नाम खड्गसिंह है ।

विक्रमसिंह ने कहा—खड्गसिंह, इतनी उम्र मे आकर क्या तुम फिर लडके बन गये ।

काका साहब सिर नीचा करके चुप हो रहे ।

विक्रमसिंह ने कहा—काका साहब, तुम्हीं ने यह काम किया । तुम्हारे हाथ से आज विजयगढ की अप्रतिष्ठा हुई ।

काका साहब चुप खडे रहे । उनके हाथ थर थर काँपने लगे । उन्होंने काँपते हुए हाथो से माथा छूकर मन ही मन कहा—"अदृष्ट ।"

विक्रमसिंह—मेरे क़िले से बादशाह का विरोधी क्या निकल भागा दिल्लीश्वर के निकट तुमने मुझको अपराधी बना दिया ।

बडी बडी पगड़ी बाँधे लोगो ने आकर उस मकान मे धूम मचा दी। उसके कोई एक हफ्ते के बाद हाथी, घोडे, लोग, लशकरों को लिये नक्षत्रराय गुजुरपाडा गाँव मे आ पहुँचे। उनका ठाट-बाट देख कर गाँववालों के मुँह से कोई शब्द न निकला। इतने दिनो तक वे पीताम्बर को ही बडा राजा करके मानते थे किन्तु आज वह बात किसी के मन मे स्थिर नहीं रही। नक्षत्रराय को देख कर सभी एक-स्वर से बोले—हाँ, राजकुमार ऐसे ही होते हैं।

यद्यपि नक्षत्रराय को देख कर और उसके तेज के सामने, पीताम्बर और उसका सुशोभित पक्का दालान एव देवी-गृह तक सब फीके पड गये तथापि उनके आनन्द की सीमा न रही। नक्षत्रराय को उन्होने इतना बडा राजा माना कि अपनी छोटी सी राजमर्यादा को नक्षत्रराय के चरणों में अर्पित करके वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। नक्षत्रराय जब कभी हाथी पर चढ कर निकलते हैं तब पीताम्बर अपनी प्रजा को पुकार कर कहते हैं—"तुम लोगों ने राजा देखा है? देख लो यह है राजा।" पीताम्बर प्रतिदिन कितनी ही खाने की चीजें उपहार मे लेकर नक्षत्रराय को देख आते हैं। नक्षत्रराय का नया खूबसूरत चेहरा देख कर पीताम्बर के हृदय में प्रेम उमड़ आता है। नक्षत्रराय ही गाँव के राजा बन गये। पीताम्बर प्रजा की श्रेणी मे जा मिले।

दिन में तीन बार नौबत बजने लगी। गाँव के रास्ते में हाथी घोडे चलने लगे। ड्योढी पर पहरेदारो के हाथ में नगी

तलवार बिजली की तरह चमकने लगी। हाट बाजार बस गया। पीताम्बर और उनकी प्रजा मारे खुशी के सभी प्रफुल्लित हो उठे। नक्षत्रराय इस देश-निकाले की सजा में राजा होकर सारा दुख भूल गये। यहाँ उनके ऊपर राजत्व का भार कुछ भी नहीं है किन्तु राजकीय सुख सभी कुछ है। यहाँ वे सर्वथा स्वतन्त्र हैं। अपने देश में उनका इतना बडा रोब दाब नहीं था। सिवा इसके, इस जगह रघुपति की छाया तक नहीं। नक्षत्रराय उल्लसित-मन से भोग-विलास में निमग्न हो गये। ढाका शहर से नर्तकी और नर्तक आये। नक्षत्रराय को नाच, गान और वाद्यों में जरा भी अरुचि न थी।

नक्षत्रराय ने त्रिपुरा राज का सारा अनुकरण किया। नौकरों में किसी को मन्त्री बनाया, किसी को सेनापति मुकर्रर किया। पीताम्बर दीवानजी के नाम से पुकारे जाने लगे। कायदे के साथ राजदरबार होने लगा। नक्षत्रराय बडे ठाट से इनसाफ करने बैठते हैं। नकुल ने आकर नालिश की—"मथुरा ने मुझको कुत्ता कहा है।" उसका विधिपूर्वक विचार हुआ। कुल सुबूत इकट्ठे होने के बाद मथुरा ही अपराधी सिद्ध हुआ। नक्षत्रराय ने बडे गम्भीर भाव से हुक्म दिया—"नकुल मथुरा के कान मल दे।" इस प्रकार नक्षत्रराय सुख से समय बिताने लगे। किसी किसी दिन जब कोई काम हाथ में न आता था तब दिल-बहलाव के लिए अस्वाभाविक कोई नया तमाशा आविष्कार करने के हेतु मन्त्री की पुकार होती थी। राजसभा-

सर्दों को एकत्र कर मन्त्री वडी व्यग्रता के साथ नया तमाशा ईजाद करने के लिए उद्यत होते थे । अगाध चिन्ता और विचार का अन्त न रहता था । एक दिन कुछ सिपाहियो को लेकर पीताम्वर के देवी-गृह पर आक्रमण किया गया । और उनके तालाव से मछली, उनके वाग से कच्चे नारियल के फल और पालक का साग लूट की सामग्री के रूप में वडी धूमधाम के साथ वाजे वजवाते हुए डयोढी पर लाया गया । इस प्रकार के खेलो में नक्षत्रराय के ऊपर पीताम्वर का स्नेह और भी वढ गया । आज राज-भवन में विल्ली का विवाह है । नक्षत्रराय के पास एक छोटी सी विल्ली थी । उसके साथ मण्डल के विलाव का विवाह होगा । चूडामणि घटक को इस जोडी के मिलाने का पुरस्कार तीन सौ रुपये और एक शाल मिली है । हलदी तेल आदि चढ़ाने की सभी रीति-रस्म हुई । आज सन्ध्या-समय शुभ मुहूर्त मे व्याह होगा । इस महोत्सव के कारण कई दिनों से राज-भवन में किसी को दम लेने की फुरसत नहीं । शाम के वक्त सडको पर रोशनी की गई । नौवतखाने मे वाजे वजने लगे । मण्डल वावू के घर से मयाने मे वैठ कर, कमखाव की पोशाक पहने, दुलहा अत्यन्त अधीर स्वर मे म्याऊँ म्याऊँ करते चला । मण्डल वावू के घर का एक छोटा लडका शहवाला की तरह उसके गले की डोरी पकडे उसके साथ साथ आरहा है । स्वस्ति-वाचन और शङ्खध्वनि सहित वर मण्डप मे लाये गये । पुरोहित का नाम था केनाराम, परन्तु नक्षत्रराय ने उसका नाम रक्खा था

रघुपति । नक्षत्रराय असली रघुपति से डरते थे इसी से नकली रघुपति के साथ हँसी ठट्ठा करके खुश होते थे। इतनी ही नहीं बल्कि बात बात में उसकी दुर्दशा भी करते थे । बेचारा केनाराम चुपके चुपके सब सह लेता था । दैव-दुर्विपाक से आज केनाराम दरबार में हाजिर न था । उसका लडका ज्वर के मारे मरा जा रहा है । नक्षत्रराय ने घबराहट के स्वर में पूछा—‘ रघुपति कहाँ है ?” नौकर ने कहा—“उनके घर कोई बीमार है ।” नक्षत्रराय ने कडक कर कहा—“बुलाओ उसको ।” लोग दौडे । उस वक्त खूब ज़ोर से रोती हुई बिल्ली के सामने नाच-गान होने लगा । नक्षत्रराय ने कहा—“सहाना गाओ ।” सहाना गान आरम्भ हुआ । कुछ देर के बाद नौकर ने आकर निवेदन किया— “रघुपति आगये ।” नक्षत्रराय ने क्रोध में भर कर कहा— “बुलाओ ।” पुरोहितजी ने तुरन्त घर में प्रवेश किया । उसको देखते ही नक्षत्रराय की चढी हुई भौंहे उतर गईं । उनका भाव बिलकुल बदल गया । उनका मुँह मलिन हो गया । पेशानी पर पसीना देख पडा । सहाना और सारङ्गी तबला आदि सभी बाजे एकाएक बन्द हो गये । उस सूने घर मे केवल बिल्ली का म्याऊँ म्याऊँ शब्द भर गया ।

हाँ, है तो यह रघुपति ही, इसमें कोई सन्देह नहीं । लम्बे, दुबले, तेजस्वी रघुपति की, बहुत दिनो के भूके कुत्ते की तरह, दोनो आँखें बल रही हैं । वह धूल से भरे हुए दोनो पैर कमख़ाब की मसनद पर रख कर और सिर ऊँचा करके खडा होगया ।

उसने कहा—"नक्षत्रराय !" नक्षत्रराय कुछ न बोले । रघुपति ने कहा—"तुम ने रघुपति को बुलाया है । मैं आगया । नक्षत्रराय ने दबी आवाज में कहा—"हाँ ।" रघुपति ने कहा—"उठो, इधर आओ ।" नक्षत्रराय धीरे धीरे महफ़िल से उठ गये । बिल्ली का व्याह, सहाना, तथा सारङ्गी सब एक-दम बन्द हो गये ।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

रघुपति ने पूछा—यह क्या होता था ?

नक्षत्रराय ने सिर खुजा कर कहा—नाच ।

रघुपति घृणा के साथ नाक सिकोड कर बोला—छि छि ।

नक्षत्रराय अपराधी की तरह खडे रहे ।

रघुपति ने कहा—कल यहाँ से चलना होगा । उद्योग करो ।

नक्षत्रराय ने कहा—कहाँ जाना होगा ?

रघुपति—यह फिर बताऊँगा, अभी यहाँ से मेरे साथ चले चलो ।

नक्षत्रराय—मैं यहा अच्छी तरह हूँ ।

रघुपति—"अच्छी तरह हूँ !" तुम राजवश मे उत्पन्न हुए हो । तुम्हारे पुरुपा लोग सभी राज्योपभोग करते आये हैं । आज तुम इस जगली गाँव में शृगालो के राजा बने बैठे हो, तिस पर भी कह रहे हो—अच्छी तरह हूँ ।

रघुपति ने कड़वी बातों और तीक्ष्ण-कटाक्ष-पात से स
कर दिया कि नक्षत्रराय अच्छी दशा में नहीं हैं। नक्षत्ररा
भी रघुपति के मुँह के तेज से अभिभूत होकर बहुत कुछ
ही समझा। उन्होंने कहा—अच्छी तरह क्या, किसी
दिन बिता रहा हूँ। फिर और क्या करूँ। उपाय ही क्या है

रघुपति—उपाय बहुत हैं। उपायों की कमी नहीं। मैं
उपाय बतला दूँगा। तुम मेरे साथ चलो।

नक्षत्रराय—दीवानजी से एक बार पूछ लूँ?

रघुपति—नहीं।

नक्षत्रराय—और मेरा यह सब माल असबाब?

रघुपति—इसकी कोई जरूरत नहीं।

नक्षत्रराय—नौकर?

रघुपति—कुछ जरूरत नहीं।

नक्षत्रराय—मेरे हाथ में अभी काफी रुपये नहीं हैं।

रघुपति—मेरे पास हैं। अब बहुत सोच विचार न करे
अभी सोने जाओ। कल सवेरे ही रवाना होना है। यह कह
जवाब की अपेक्षा किये बिना ही रघुपति चला गया।

सुबह नक्षत्रराय जाग उठे। बन्दीगण (भाट) सुन
रागिनी में मधुर गीत अलाप रहे थे। नक्षत्रराय ने बाहर
कमरे में आकर खिड़की से झाँक कर देखा। पूरब की
सूर्योदय हो रहा है। लाल लाल लकीरें दिखाई दे रही

निःशब्द गाँवो के घरो के करीब से, ब्रह्मपुत्र नदी अपनी विपुल जलधारा को लेकर निरन्तर बह रही है। कोठे के झरोखे से नदी के किनारे का एक छोटा घर नजर आता है। एक औरत आँगन में झाड़ू दे रही है। एक मर्द उसके साथ दो-एक बाते करके, माथे मे चादर लपेट, एक बाँस की लम्बी लाठी के आगे की तरफ पोटली बाँध कर स्वस्थ चित्त से कहीं बाहर चला गया। श्यामा और दाहियल पक्षी सीटी भर रहे हैं। हुरदा एक बडे झग्राड पेड के घने पत्तों में बैठ कर गा रहा है। झरोखे के पास खडे होकर और बाहर की तरफ देख कर नक्षत्रराय ने ठण्डी साँस ली। इसी समय रघुपति ने पीछे से आकर नक्षत्रराय को स्पर्श किया। नक्षत्रराय चौंक उठे। रघुपति ने कोमलता-सहित मध्यम स्वर में कहा—यात्रा का सब सामान ठीक है।

नक्षत्रराय हाथ जोड कर बडी अधीरता से बोले—महाशय, मुझे क्षमा कीजिए। मैं यहाँ से कहीं जाना नहीं चाहता। मैं इस जगह आराम से हूँ।

रघुपति ने कुछ न कह कर नक्षत्रराय के चेहरे की तरफ अपनी अङ्गारवत् दृष्टि स्थापित की।

नक्षत्रराय ने आँखें नीची करके कहा—कहाँ जाना होगा?

रघुपति—अभी नहीं कह सकता।

नक्षत्र—भाई के विरुद्ध मैं कोई काम न कर सकूँगा।

रघुपति मारे क्रोध के जल कर बोला—भाई ने तुम्हारा

कौन सा बड़ा उपकार किया है । कहो तो जरा मैं भी सुनूँ ।

नक्षत्रराय ने मुँह फेर कर और झरोखे पर लकीर खींच कर कहा—मैं जानता हूँ, वे मुझ पर प्रेम रखते हैं ।

रघुपति ने उत्कट सूखी हँसी हँस कर कहा—हरे ! हरे ! बड़ा भारी प्रेम । मैं सब समझता हूँ । ध्रुव को बे-खटके उत्तराधिकारी बनाने के लिए भाई ने झूठा इलजाम लगा कर तुम्हें राज्य से निकाल दिया है । अहा, राज्य के गुरुतर भार से मक्खन के पुतले सदृश कोमल, भाई कहीं दुखी न हो जाय । अब उस राज्य मे क्या सहज ही प्रवेश कर सकोगे ? मूर्ख !

नक्षत्रराय ने तुरन्त कहा—क्या मैं इतनी साधारण बात भी नहीं समझता ? मैं सब समझता हूँ । लेकिन समझ ही कर क्या करूँगा । उपाय ही क्या है ?

रघुपति—उसी उपाय की बात हो रही है । उसी के लिए मैं आया हूँ । इच्छा हो तो मेरे साथ चले चलो, नहीं तो इस बाँस के जङ्गल मे बैठ कर अपने शुभचिन्तक बाप-दादों के नाम जपा करो । मैं जाता हूँ ।

इतना कह कर रघुपति जाने लगा । नक्षत्रराय ने तुरन्त उसके पीछे पीछे चल कर कहा—मैं भी चलूँगा । अगर दीवानजी जाना चाहें तो उनको अपने साथ ले जाने मे क्या हर्ज है ?

"सिवा मेरे और कोई तुम्हारे साथ न जायगा ।"

घर छोड़ कर नक्षत्रराय का पाँव बाहर बढ़ना नहीं चाहता ।

विनोद की इन सामग्रियो को छोड़ कर और दीवानजी को त्याग कर न मालूम रघुपति के साथ अकेले कहाँ जाना पडेगा। किन्तु रघुपति माने उनकी चोटी पकड कर खींचे लिये जा रहा है। इसके सिवा नक्षत्रराय के मन में भय के साथ ही साथ एक प्रकार का कुतूहल भी उत्पन्न होने लगा। कुतूहल का भी एक अजब खिंचाव है।

नाव प्रस्तुत है। नदी किनारे जाकर नक्षत्रराय ने देखा—कन्धे पर अँगोछा डाले पीताम्बर स्नान करने आये हैं। पीताम्बर नक्षत्रराय को देख कर और मुसकरा कर बोले—जय हो महाराज! सुना है कि कल कहीं से एक दुष्ट मनहूस ब्राह्मण ने आकर हँसी-ख़ुशी के व्याह मे बाधा डाल दी।

नक्षत्रराय सहम गये। रघुपति ने स्थिर भाव से कहा—वह दुष्ट ब्राह्मण मैं ही हूँ।

पीताम्बर हँस कर बोले—आपके मुँह पर आपकी तारीफ करना भी तो ठीक नहीं। जान बूझ कर कौन बाप का बेटा ऐसा काम करता (अर्थात् मुँह पर किसी की कोई निन्दा नहीं करता)। आप बुरा न मानिएगा। परोक्ष मे लोग क्या नहीं कहते हैं। जो सामने मुझे राजा कहता है वही परोक्ष में पितम्बरा कहता है। परोक्ष मे कोई कुछ कहा करे, मुँह पर कुछ न कहने के समान ही हुआ। मैं तो यही समझता हूँ। सच पूछिए तो न मालूम आपका मुँह ऐसा अधिक अप्रसन्न क्यों

दिखाई देता है। किसी के मुँह का ऐसा भाव देखने ही से लोगों में उसकी शिकायत होने लगती है।

"महाराज, इतने सवेरे नदी-किनारे आने का क्या कारण?"

नक्षत्रराय ने कुछ करुण स्वर में कहा—दीवानजी, मैं अब जा रहा हूँ।

पीताम्बर—जा रहे हैं? कहाँ? नृपाडा में, मण्डलबाबू के मकान पर?

नक्षत्रराय—नहीं दीवानजी, मण्डलबाबू के मकान पर नहीं, बहुत दूर।

पीताम्बर—बहुत दूर? तो क्या पाइकघाट आखेट करने जाते हैं?

नक्षत्रराय ने एक बार रघुपति के मुँह की तरफ देख कर केवल खिन्न भाव से निषेधबोधक सिर हिलाया।

रघुपति ने कहा—समय बीता जा रहा है। नाव पर चढ़िए।

पीताम्बर ने बड़े ही सन्देह और क्रोध के साथ ब्राह्मण के मुँह की तरफ देखा और कहा—बाबाजी, तुम कौन हो? हमारे महाराज के ऊपर हुकूमत करने आये हो?

नक्षत्रराय ने व्यग्र होकर पीताम्बर को अपने पास खींच कर कहा—ये हमारे गुरु हैं।

पीताम्बर ने कहा—भले ही गुरु हों, वे हमारे देवीघर में

जाकर रहे। मैं चावल, दूध, केले आदि का प्रवन्ध कर दूँगा। सम्मान-पूर्वक बने रहे।

महाराज को वहाँ क्या काम है ?

रघुपति—समय व्यर्थ नष्ट हो रहा है, तो मैं अब जाता हूँ।

पीताम्बर—आपकी खुशी, देर करने का प्रयोजन क्या है। महाशय, आप झटपट पधारिए। महाराज को लेकर मैं ड्योढी पर जाता हूँ।

नक्षत्रराय ने एक बार रघुपति के चेहरे की ओर देख कर कोमल स्वर में कहा—नहीं दीवानजी, मैं जाता हूँ।

पीताम्बर—तो मैं भी चलता हूँ। नौकरों को साथ लें लीजिए। राजा की तरह चलिए। राजा जायँगे तो क्या साथ में दीवानजी न जायँगे ?

नक्षत्रराय ने केवल रघुपति के चेहरे की तरफ देखा।

रघुपति ने कहा—कोई साथ में नहीं जायगा।

पीताम्बर उदास होकर नक्षत्रराय का हाथ पकड़ कर बोले—देखो बाबू, मैं तुम्हें राजा कह कर पुकारता हूँ, किन्तु तुम्हें सन्तानवत् प्यार करता हूँ। मेरे कोई सन्तान नहीं। तुम्हारे ऊपर मेरा कोई जोर नहीं चल सकता। तुम जा रहे हो। मैं जबरदस्ती तुम्हे रोक भी नहीं सकता। किन्तु मेरा एक यही अनुरोध है कि आप कहीं जाइए, पर मेरे मरने से पहले ही यहाँ लौट आइएगा। मैं अपने हाथ से अपनी सारी सम्पत्ति आपको सौंप दूँगा। बस, मेरा यही एक मनोरथ है।

नक्षत्रराय और रघुपति नाव पर चढे। नाव दक्खिन की तरफ रवाना हुई। पीताम्बर स्नान करना भूल गये, अँगोछा कन्धे पर रक्खे ही चिन्तित चित्त से घर लौट गये। गुजरपाडा मानो शून्य हो गया। उसका आनन्द-उत्सव सब समाप्त हो गया। केवल प्रकृति का नित्योत्सव प्रतिदिन के लिए रह गया। सुवह चिडियो की चहचहाहट, पत्तो की खडखडाहट और नदी मे तरङ्गरूपी करतलध्वनि का विश्राम नहीं।

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

सफर दूर का है। कही नदी है, कहीं घना जगल है, कहीं सुनसान जगल है। कभी नाव पर, कभी पैदल ही, कभी टट्टू पर, कभी धूप में, कभी वर्षा के पानी में, कभी शोर-गुल होते हुए दिन मे और कभी रात के भयङ्कर अँधेरे मे नक्षत्रराय बराबर चले जा रहे हैं। कितने ही देश, कितने ही विचित्र दृश्य और कितने ही विचित्र लोग दिखाई दे रहे हैं। किन्तु नक्षत्रराय के पार्श्व में छाया की तरह म्लान, और धूप की तरह प्रकाशमान वही एक-मात्र रघुपति है। दिन में रघुपति, रात में रघुपति और स्वप्न में भी, सर्वत्र रघुपति विराजमान है। सडक पर यात्रियों का ताँता लग रहा है। सडक के किनारे धूल में लडके खेल रहे हैं। पैंठ में सैकडो आदमी

ख़रीद-फ़रोख़्त कर रहे हैं। गाँव मे बूढे लोग चौपड़ खेल रहे हैं। घाट पर स्त्रियाँ पानी भर रही हैं। नाव पर माँझी गीत गाते हुए चले जा रहे हैं। परन्तु नक्षत्रराय के पास वही एक दुबला पतला रघुपति हमेशा जाग रहा है। ससार मे चारो तरफ विचित्र कौतुक हो रहे हैं, विचित्र घटनायें सघटित हो रही हैं किन्तु इस अद्भुत रहस्यमय नाट्यशाला के बीच से नक्षत्रराय की अभाग्यता उन्हे घसीटे लिये जा रही है। जन-समाज उनके लिए निर्जन हो रहा है। लोगो के निवासस्थान उनके लिए मरुभूमि हो रहे हैं। नक्षत्रराय थक कर अपनी पार्श्ववर्तिनी छाया से पूछते हैं—"अब और कितनी दूर जाना होगा?" छाया उत्तर देती है—"बहुत दूर।" "कहाँ जाना होगा?" इसका जवाब नहीं। नक्षत्रराय साँस लेकर चल पडते हैं। पेड़ो की पक्ति मे पत्तों से छाये हुए साफ सुथरे सूने घरों को देख कर उनके मन में आता है कि अगर मैं इन घरों का अधिवासी होता तो कैसा अच्छा होता। गोधूली के समय जब चरवाहे कन्धे पर लाठी रक्खे मैदान और गाँव के रास्ते से धूल उडाते हुए गाय-बछड़ो को लिये चले आते हैं तब नक्षत्रराय के मन में होता है कि अगर मैं इन लोगों के साथ जाने पाता, और साँझ के समय घर जाकर विश्राम करता तो क्याही अच्छा होता। दो-पहर दिन की कडी धूप में किसान हल चला रहा है। उसे देख कर नक्षत्रराय सोचते हैं—"अहा! यह कैसा सुखी है।"

रास्ते की तकलीफ से नक्षत्रराय कान्ति-हीन, दुबले और काले हो गये हैं। रघुपति से कहते हैं—"बाबा, मैं अब न बचूँगा"। रघुपति कहता है—"अभी तुमको मरने कौन देगा ?" नक्षत्रराय को निश्चय हो गया कि रघुपति से बिना छुट्टी पाये हमको मरने का भी सुभीता नहीं। एक औरत नक्षत्रराय को देख कर बोली—"अहा, यह किसका लड़का है ! इसको घर से किसने बाहर किया है" यह सुन कर नक्षत्रराय का हृदय पिघल गया। उनके नयनों में नीर भर आया। उनकी इच्छा हुई कि उस औरत को माँ कह कर उसके साथ उसके घर चले जायँ।

रघुपति के हाथ से नक्षत्रराय जितना ही कष्ट पाने लगे उतना ही वे उसके अधीन होने लगे। रघुपति की अँगुली के इशारे पर उनकी स्थिति परिचालित होने लगी।

चलते चलते क्रमश नदी का बाहुल्य घटने लगा। क्रमश कठिन भूमि आगे आई। मिट्टी लाल और कँकरीली है। दूर दूर लोगों के घर दिखाई देते हैं। दरख्त बहुत कम हैं। नारियल के जगलवाले देश को छोड़ कर ये दोनों पथिक ताड़वनवाले देश में आ गये। बीच बीच में बड़े बड़े बाँध हैं। सूखी नदी का प्रवाहपथ है। दूरवर्त्ती पहाड़ मेघ के सदृश दिखाई दे रहा है। क्रमश शाह शुजा की राजधानी राज-महल समीपस्थ होने लगा।

— —

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

शुजा जैसे तैसे राजधानी (राजमहल) में पहुँच गय। हार होने और कैदख़ाने से भाग निकलने के बाद शुजा नई फौज एकत्र करने का उद्योग करने लगे। किन्तु ख़ज़ाने में रुपये ज्यादा मौजूद नहीं। प्रजा मालगुज़ारी के मारे तबाह है। इसी अरसे में औरङ्गज़ेब दारा को हरा कर दिल्ली के शाही तख़्त पर बैठ गया। यह ख़बर पाकर शुजा बिलकुल घबरा गये। किन्तु लड़ाई का सामान ठीक नहीं था, इससे कुछ मुहलत मिल जाने की इच्छा से शुजा ने कपट करके औरङ्गज़ेब के पास एक दूत भेज दिया। उससे कहला भेजा कि आँखो के तारे हृदय के आनन्दस्वरूप, परमस्नेही परम प्रिय भाई औरङ्गज़ेब सिंहासन प्राप्त कर सफल-मनोरथ हुए हैं, इससे शुजा के मृत शरीर में मानो प्राण पलट आये। इस समय नये बादशाह अगर शुजा के लिए बंगाल का शासन-भार देना स्वीकृत करें तो उसके लिए ख़ुशी की और कोई बात बाकी न रह जाय। औरङ्गज़ेब ने बड़ी इज्ज़त के साथ दूत से मिल कर शुजा का कुशल पूछा और उनके बाल-बच्चों का शुभ समाचार जानने के लिए बड़ी उत्कण्ठा प्रकट की। उसने कहा—जब ख़ुद बादशाह शाहजहाँ ने शुजा को बंगाल का शासन-भार सौंपा है तब उसके लिए फिर नई परवानगी देने की कोई जरूरत नहीं।

इसी अवसर पर रघुपति शुजा के दरबार में जाकर हाजिर हुआ।

शुजा ने बड़ी कृतज्ञता और सम्मान के साथ अपने उद्धार-कर्ता रघुपति को बुलाया और पूछा—क्या हाल है ?

रघुपति ने कहा—हुज़ूर की खिदमत में कुछ इत्तिला करनी है।

शुजा ने मन ही मन सोचा—अब फिर कैसी इत्तिला ? कुछ द्रव्य न माँगे तो खैरियत है।

रघुपति ने कहा—मेरी प्रार्थना यही है कि—

शुजा ने कहा—ब्राह्मण, मैं तुम्हारी ख्वाहिश जरूर पूरी करूँगा। लेकिन कुछ दिन सब्र करो। अभी खजाने में ज्यादा रुपया नहीं है।

रघुपति ने कहा—जनाब आली, मैं सोना चाँदी अथवा और कोई द्रव्य नहीं चाहता। मैं अभी केवल सान दिया हुआ लोहा चाहता हूँ। मेरी नालिश सुनिए, मैं सिर्फ विचार के लिए प्रार्थना करता हूँ।

शुजा—बड़ी मुश्किल हुई। यह विचार करने का समय नहीं है। तुम बड़े बे-मौके आये।

रघुपति ने कहा—शाहज़ादा साहब, वक्त बे वक्त सभी के लिए है। आप बादशाह हैं तो आपके लिए भी है और मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ तो मेरे लिए भी है। आप अपने वक्त के

मुताबिक अपने ही विचार मे उलझे रहेगे तो फिर मेरा वक्त कहाँ जायगा ? मेरा विचार कौन करेगा ?

शुजा ने मजबूर होकर कहा—बडी कबाहत है । इतनी बाते सुनने की अपेक्षा तुम्हारी नालिश सुन लेना अच्छा है । कहो, क्या कहना है ?

रघुपति ने कहा—त्रिपुरा के राजा गोविन्दमाणिक्य ने अपने छोटे भाई को अपने राज्य से बे कुसूर बाहर कर दिया है ।

शुजा रुष्ट होकर बोले—वरहमन, तुम दूसरे की नालिश लेकर मेरे वक्त को क्यो बरबाद करते हो । अभी इन बातो के विचार करने का वक्त नहीं है ।

रघुपति—अभियोगी (मुद्दई) राजधानी मे हाजिर है ।

शुजा—वह खुद हाजिर होकर अपने मुँह से जब नालिश करेगा तब विचार किया जायगा ।

रघुपति—उन्हें यहाँ किस वक्त हाजिर करूँ ?

शुजा—वरहमन किसी तरह पिण्ड नहीं छोडता । अच्छा, एक हफ्ते के बाद उसे ले आना ।

रघुपति ने कहा—हुजूर का हुक्म हो तो मैं कल उन्हे यहाँ हाजिर करूँ ।

शुजा ने झुँझला कर कहा—"अच्छा, कल ही उसे यहाँ ले आना ।" आज दिन भर के लिए शुजा ने उद्धार पाया । रघुपति वहाँ से चला गया ।

नक्षत्रराय ने कहा—नवाब के पास जायँगे तो, लेकिन नजराने के लिए क्या ले जायँगे ?

रघुपति—"उसके लिए तुमको तरद्दुद न करना होगा।" उसने नजराने के लिए डेढ लाख रुपये लाकर उनके आगे रख दिये।

दूसरे दिन सवेरे ही रघुपति, डरते हुए नक्षत्रराय को साथ लेकर, शुजा के दरबार में हाजिर हुआ। जब डेढ लाख रुपये नवाब के पैरों के पास रक्खे गये तब उनका चेहरा वैसा उदास न देख पडा। नक्षत्रराय की नालिश बडी आसानी के साथ उनकी समझ में आ गई। उन्होंने कहा—इस वक्त तुम क्या चाहते हो सो कहो!

रघुपति ने कहा—गोविन्दमाणिक्य को राज्यच्युत करके उनकी जगह नक्षत्रराय को राजा बनने की परवानगी दी जाय।

यद्यपि शुजा अपने भाई का सिंहासन हडपने के लिए जरा भी कुण्ठित नहीं है तथापि ऐसे मौके पर उनके हृदय में कुछ रुकावट सी आ खडी हुई। किन्तु रघुपति की प्रार्थना पूरी कर देना ही उन्हें फिलहाल सब बातों की अपेक्षा सुगम जान पडा। ऐसा न करने से रघुपति फिर बहुत सी दलीलें करेगा, यही डर था। दूसरा यह कि डेढ लाख रुपया नजराना पाने पर भी तरद्दीद करना ठीक नहीं। उन्होंने कहा—अच्छा गोविन्दमाणिक्य को राज्य से अलग होने और नक्षत्रराय को राज्य मिलने

का परवाना तुम्हे दिया जायगा। तुम उसे अपने साथ ले जाओ।

रघुपति ने कहा—कुछ शाही फौज को भी साथ जाने की इजाजत दी जाय।

शुजा ने दृढता के साथ कहा—नहीं, नहीं, यह बात नहीं होगी। मैं लडाई में अभी अपने को नहीं उलझा सकता।

रघुपति ने कहा—लडाई के खर्च के लिए छत्तीस हजार रुपये मैं और रक्खे जाता हूँ। और त्रिपुरा की गद्दी पाते ही नक्षत्रराय एक साल का खजाना सेनापति के हाथ भेज देंगे।

यह प्रस्ताव शुजा को अत्यन्त उपयुक्त जान पडा। मन्त्री भी इस विषय मे सहमत हुए। मुगलसेना का एक दल साथ लेकर रघुपति और नक्षत्रराय त्रिपुरा की तरफ रवाना हुए।

उनतीसवाँ परिच्छेद

इस समय ध्रुव की उम्र चार वर्ष की है। अब वह बहुत बाते करना सीख गया है। वह अब अपने को बडा समझता है। यद्यपि सब बाते स्पष्ट नहीं बोल सकता तथापि जो कुछ बोलता है खूब जोर से बोलता है। "खिलौना दूँगा" कह कर वह अकसर राजा को विशेष प्रलोभन और आश्वासन देने लगा है। राजा अगर कभी अप्रियता का लक्षण प्रकट करते हैं तो ध्रुव उनको "घर में बन्द कर दूँगा" कह कर खूब धमकाता

है। राजा अभी इसकी सख्त हुकूमत के पावन्द हैं । ध्रुव की नापसन्द का कोई काम करना वे ज्यादा पसन्द नहीं करते ।

इसी बीच ध्रुव का और एक पड़ोसी की लड़की का एका-एक साथ हो गया। वह उम्र मे ध्रुव से छ मास छोटी है। दसही मिनट में उन दोनो के बोच घनिष्ठता हो गई। बीच में छोटा सा मनमुटाव होने की भी बात उपस्थित हुई थी। ध्रुव के हाथ में एक बड़ा बताशा था। प्रथम प्रेम के उफान मे ध्रुव ने, अपनी दो छोटी उँगलियो से, बड़ी सावधानी के साथ एक छोटा सा कना तोड़ कर एक-दम उस लड़की के मुँह मे रख दिया और बड़ा खातिर से गर्दन हिला कर कहा—"तुम खाओ।" उसने उसे खाया और प्रसन्न होकर कहा—"और भी खाऊँगी।" अब तो ध्रुव कुछ अधीर हो गया, मित्रत्व भाव पर इतना बड़ा दबाव उसे न्यायसगत न जान पड़ा। उसने अपनी स्वाभाविक गम्भीरता और चतुरता के साथ सिर हिला कर और आँखे दिखला कर कहा—"अब औाल नहीं खाओ, बहुत खाने से औागुन कलेगा। बाबा मालेगा।" यह कह कर उसने झटपट सारे बताशे को अपने मुँह में एक ही बार रख लिया। हठात् उस लड़की के मुँह का भाव बदलने लगा और रोने का लक्षण प्रकट हुआ। ध्रुव किसी का रोना बरदाश्त नहीं कर सकता था। वह तुरन्त धीरता के साथ आश्वासन देकर बोला—कल दूँगा।

राजा के आते ही ध्रुव बड़ी सावधानी से अपनी नई सङ्गिनी की ओर लक्ष्य करके बोला—"इसे कुछ मत कहो, यह लोवेगी।

ध्रुव ने सोच कर कहा—"मैं टक टक पल चढ़ुगा ।" टक-टक का मतलब यहाँ घोड़े से है । "र" की जगह ध्रुव अभी तक "ल" का ही उच्चारण करता है ।

पुरोहित ने कहा—वाह, वाह, मेरे प्रश्न और तुम्हारे उत्तर का खासा मेल है ।

एकाएक ध्रुव की दृष्टि उस लड़की पर जा पड़ी। उसके सम्बन्ध में बड़े ही मुख्तसर तौर पर अपना मनोगत भाव प्रकट करके कहा—"वह दुष्टा है, उसे मालूँगा ।" यह कह कर उसने अपनी छोटी सी मुट्ठी बाँध कर ऊपर उठाई ।

राजा ने कहा—ध्रुव, यह क्या करते हो । छि ।

एक ही फूँक मे जैसे दिया बुझ जाता है वैसे ही उस बात से ध्रुव का चेहरा तुरत मलिन हो गया । पहले तो आँसू रोकने के हेतु वह दोनो आँखो को दोनो मुट्ठियों से रगड़ने लगा किन्तु देखते देखते वह अपने छोटे से कोमल कलेजे को न सम्हाल सका और रो उठा । बिल्वन ठाकुर ने उसे झुला कर, गोद में लेकर, एक बार ऊपर उठा कर और एक बार नीचे उतार कर हैरान कर दिया और खूब जोर से जल्दी जल्दी उच्चारण करके कहा—सुनो, सुनो, ध्रुव, तुमको मैं एक श्लोक सुनाता हूँ । सुनो तो—

"कलहकटकटाङ्ग काठकाठिन्यकाट्य ,
कटनकिटनकीट कुट्मल खट्टमट्टम " ।

अर्थात् जो लड़का बहुत रोवे उसको कलह कटकटाङ्ग के

भीतर बन्द करके अच्छी तरह काठ काठिन्य काष्ट्यम् देना चाहिए। इसके बाद इन कटन किटन कीट को लेकर बस, तीन दिन तक कुट्मल खट्टमट्टम्—पुरोहित महाशय इस तरह अट सट बक गये। ध्रुव का रोना अभी पूरा नहीं हुआ था पर इस युक्ति से बीच मे ही एक-दम बन्द हो गया। पहले तो वह उस आश्चर्यजनक व्यवहार से चकित होकर चुपचाप बिल्वन ठाकुर के मुँह की ओर ताकने लगा, फिर उनके हाथ-मुँह चमकने की मुद्रा देख कर उसे बडा ही कुतूहल हुआ। वह अत्यन्त प्रसन्न होकर बोला—"फिल कहो"। पुरोहित फिर बक गय। ध्रुव खूब हँसते हँसते बोला—"फिल कहो।" राजा ने ध्रुव के आँसू से भीगे हुए गालो को और हँसी से भरे हुए ओठो को बार बार चूमा। उस समय राजा, राज-पुरोहित और उन दोनो लडके-लडकियों के बीच मानों एक स्नेह आ खडा हुआ।

बिल्वन ठाकुर ने राजा से कहा—महाराज, आप इन लोगो के साथ मे रह कर बडे अच्छे हैं। दिन-रात तीक्ष्ण बुद्धिवालो के साथ रहने से बुद्धि लुप्त हो जाती है। छुरी मे बराबर सान चढाते रहने से वह क्रमश पतली होते होते अदृष्ट हो जाती है, सिर्फ एक मोटा बेंट बच रहता है।

राजा ने कहा—मेरी समझ मे तो सूक्ष्म बुद्धि का कोई लक्षण मुझमें प्रकट नहीं पाया जाता।

बिल्वन—नहीं, सुगम पदार्थ को जो कठिन कर डाले यही एक सूक्ष्म बुद्धि का लक्षण है। ससार मे बुद्धिमान् बहुत न

होते तो ससार के कितने ही काम सुगम हो जाते । जितना ही सुभीता करते जाओ उतनी ही असुविधा बढती जायगी । अधिक बुद्धि लेकर आदमी क्या करेगा, यह मेरी समझ में नहीं आता ।

राजा ने कहा—"पाँच अँगुलियों से ही दुनिया का काम अच्छी तरह चल जाता है । दुर्भाग्यवश सात अँगुलियों के पाने की इच्छा करके केवल काम बढाना है और क्या ।" राजा ने ध्रुव को पुकारा । वह अपनी सङ्गिनी के साथ फिर मेल करके खेल रहा था । राजा का स्वर पहचान कर, खेल छोड कर, तुरन्त उनके पास दौडा आया । राजा ने उसको अपने पास बैठा कर कहा—"ध्रुव, वह नया गीत ठाकुर को सुनाओ।" ध्रुव ने बडे ही असमञ्जस भाव से बिल्वन ठाकुर के मुँह की ओर देखा । राजा ने लालच देकर कहा—"तुमको टकटक पर चढने दूँगा ।" ध्रुव अपने अधूरे उच्चारण से पढने लगा ।

प्रभु बिन तोहि कहाँ लगि तूलौं ।
छौजन मिलि मोहि पन्थ बतावत पग पग पै मग भूलौं ।
विविध वचन कहि मुनि मन मोहत तिहि सशय पडि झूलौं ॥
रही तुम्हारे ढिग जैबे की अभिलाषा मन मेरे ।
जिय के सब सन्देह मिटैहै सुखद बैन सुनि तेरे ॥
श्रुति समीप सब मिलि निज निज रुचि करत विचार बतोली ।
केहि को मैं प्रणाम करि मानौं सबकी सब विधि बोली ॥
अति अधीर चित है तेरे ढिग जाचन को जब धाऊँ ।
करत आड सब मिलि ठाढे है आस पास कित जाऊँ ॥

भेटत नाहि चरणरज तेरो वार वार पछिताऊँ।
लै धरती की धूल तवै प्रभु विग्रस लौटि पुन आऊँ॥
विविध भाँति की वृत्ति दिवानिस विविध दिशा मे धावै।
अपनी अपनी ओर चित्त को गहि गहि कलह मचावै॥
केहि विधि काहि सँभालौ नित ये आपुस मे सब जूझैं।
मैं अकेल इनकी सख्या बहु कछु उपाय नहि सूझै॥
यहै नाथ अब देहु मोहि निज प्रेमपाश सुखदाई।
सुगम पन्थ दरसावहु जेहि तें कबहुँ न होय जुदाई॥
विषयजाल मे उलझि कहाँ लौं सहिहौ दुख बिलुखाई।
जनसीदन जनि मोहि बिसारहु लेहु चरण लिपटाई॥

ध्रुव के अर्धस्फुटित स्वर मे यह गीत सुन कर विल्वन ठाकुर का हृदय एक दम पिघल गया। वे बोले—"आशीर्वाद देता हूँ, तुम दीर्घायु हो।" ध्रुव को गोद मे उठा कर विल्वन ठाकुर ने बडी आरज़ू मिन्नत के साथ कहा—बच्चा, एक बार फिर सुनाओ।

ध्रुव ने वडी सख्त चुपकी लगा कर असम्मति प्रकट की। पुजारी ने अपनी आँखें ढक कर कहा—तो मैं रोता हूँ।

ध्रुव ने कुछ कातर होकर कहा—कल सुनाऊँगा, छि लोओ मत। तुम अभी चल जाओ, बाबा मालेगा।

विल्वन ठाकुर ने हँस कर कहा—इसकी बोली बडी मधुर है। राजा से आज्ञा लेकर पुजारीजी विदा हुए।

रास्ते में दो आदमी जा रहे थे। एक दूसरे से कह रहा

था—तीन दिन उसके द्वार पर जा जाकर सिर फोड़ा पर ए
पैसा भी उससे न मिल सका। अब वह रास्ते में कहीं मिल
तो बिना उसका सिर फोड़े न रहूँगा। देखूँ तो वह क्य
करेगा?

पीछे से बिल्वन ने कहा—उससे कोई फल न होगा। बा
क्या तुम्हें सूझता नहीं। माथे में तो और कुछ है नहीं, केवल
दुर्बुद्धि भरी है। दूसरे का सिर फोड़ने की अपेक्षा अपन
सिर फोड़ना अच्छा है, क्योंकि इसके लिए किसी को जवाब
दिही नहीं देनी पड़ती।

वे दोनों आदमी डर गये और ठिठक कर ठाकुर को
प्रणाम करके खड़े हो रहे।

बिल्वन ठाकुर ने कहा—बाबू तुमने अच्छी बात नहीं
कही।

दोनों ने कहा—हाँ, ठीक है महाशय, अब ऐसी बात फिर
कभी न कहूँगा।

रास्ते में पुजारीजी को लड़कों ने घेर लिया। बिल्वन
ठाकुर ने कहा—"आज तीसरे पहर मेरे यहाँ आना, मैं आज
किस्सा सुनाऊँगा।" लड़कों ने मारे खुशी के आपस में कूद
फाँद कर हाँ हाँ हां हां मचा दी। किसी किसी दिन बिल्वन
ठाकुर राजधानी के लड़कों को एकत्र करके सरल भाषा में
उनको रामायण और महाभारत की कथा सुनाते थे। बीच
बीच में दो एक नीरस कहानी को भी सरल बना कर कहने

की चेष्टा करते थे। किन्तु जब देखते थे कि लडके अब अँगडाई जँभाई लेने लगे तब उनको मन्दिर के बगीचे मे छोड देते थे। उसमे बहुत से वृक्ष फलवाले हैं। लडके चिल्ला चिल्ला कर वानरों की तरह पेडो पर चढ जाते थे और डाल डाल पर फलों की लूट पाट मचाते थे। बिल्वन ठाकुर को यह देख कर बडा ही आनन्द होता था।

बिल्वन ठाकुर सन्यासी परमहस हैं। वे किस देश के रहनेवाले हैं, यह किसी को मालूम नहीं। ब्राह्मण हैं, किन्तु जनेऊ त्याग दिया है। बलिदान आदि बन्द करके वे एक नई रीति पर काली की पूजा कर रहे हैं। पहले पहल तो लोगो ने उसमे सन्देह और असम्मति प्रकट की थी किन्तु अब सबको सह्य हो गया है। बल्कि सब लोग विशेष करके बिल्वन की बात के पाबन्द हैं। बिल्वन सबके घर जा जाकर सबके साथ बातचीत करते हैं, सबकी खोज खबर लेते रहते हैं। और रोगी को जो औषध देते हैं वह उसे विलक्षण फायदा करता है। सुख-दु ख दोनो मे सभी लोग उन्हीं के विचार से काम करते हैं। वे मध्यस्थ होकर किसी का झगडा मिटा दें अथवा कुछ निर्णय कर दें तो उस पर फिर कोई कुछ नहीं बोलता।

तीसवाँ परिच्छेद

इस साल त्रिपुरा में वह घटना हुई जो इसके पहले कभी न हुई थी। उत्तर ओर से झुड के झुड चूहे त्रिपुरा की धान

की खेती में आ घुसे । उन्होंने कुल धानो को काट डाला । यहाँ तक कि किसानों के घर में जो कुछ धान रक्खे थे उनको भी अधिकाश खा गये । देश में चारो ओर हाय हाय मच गई। देखते देखते अकाल (दुर्भिच्च) फैल गया । लोग जगल से फल मूल ला लाकर प्राण-रचा करने लगे। जगल का अभाव नहीं है। जगल में मनुष्यो के पेट की आग बुझानेवाले भाँति भाँति के पौदे हैं। शिकार करके लाये हुए जगली जानवरो का मास बाजार में अधिक दाम पर बिकने लगा । लोग जगली भैंसे, हिरन, खरगोश, साही (शल्लकी), गिलहरी और सूअर आदि जानवरों को मार मार कर खाने लगे । हाथी मिल जाने पर लोग उसे भी नहीं छोडते थे । अजगर को भी खाने लगे । जगल मे खाने लायक पच्चियों का अभाव नहीं है । वृत्तो के कोटरों मे मधुमक्खियो के मधु-सहित छत्ते पाये जाते हैं । जगह जगह नदी का पानी बाँध कर लोग उसमे जहरीली लतायें डाल देते थे जिससे मछलियाँ उछल कर ऊपर चली आती थीं । उन मछलियो को पकड पकड कर लोग खाने लगे और कुछ सुखा सुखा कर जमा भी करने लगे। बिल्वन ठाकुर घर घर घूम कर सबको ढाढस देने लगे और खाने योग्य सामग्रियो के सग्रह की कितनी ही तदबीरें बतलाने लगे। उन्होंने बतला दिया कि वन में एक प्रकार का पौदा होता है जिसके बीज बहुत छोटे छोटे होते हैं । उन बीजों को आग पर भूनने से दूध की तरह उजले पदार्थ निकलते हैं।

वह थोड़ा सा खा लिया जाय तो बहुत शीघ्र क्षुधा शान्त हो जाती है। अब भी लोगों का आहार किसी तरह चला ही जा रहा है। पर हाहाकार बहुत मच गया। कहीं कहीं चोरी डकैती होने लगी। प्रजा ने विद्रोह का लक्षण प्रकट किया। वे लोग कहने लगे—"देवी का बलिदान बन्द कर दिया गया है उसी के अभिशाप से ये अनहोनी बातें होने लगी हैं।" बिल्वन ठाकुर ने इस बात को हँस कर उड़ा दिया। उन्होंने तफरीहन कहा—"कैलास पर कार्तिकेय और गणेश के बीच कुछ खटपट हुई है, कार्तिकेय के मयूर पर गणेश के चूहे त्रिपुरा भगवती के पास नालिश करने आये हैं।" प्रजा ने इस बात को बिलकुल परिहास ही नहीं समझा। उन लोगों ने देखा कि बिल्वन ठाकुर की बात सोलहो आने सही निकली। चूहों का दल जिस तरह शीघ्र गति से आया था उसी तरह शीघ्रता से सब धानों को नष्ट करके न मालूम कहाँ अन्तर्हित होगया। तीन दिन के भीतर फिर उसका कहीं नाम निशान न रहा। बिल्वन ठाकुर को अगह-ज्ञान (अगाध है ज्ञान) है। इस विषय में किसी को कुछ सन्देह न रहा। कैलास पर भाई भाई में वैमनस्य होने का गीत बनने लगा। स्त्रियाँ, लड़के और भिखमंगे लोग बड़े चाव से उस गीत को गाने लगे। गली गली में वह गीत प्रचलित हो गया। किन्तु राजा के ऊपर प्रजा का असन्तोष कुछ कुछ बना ही रहा। बिल्वन ठाकुर की सलाह

लगान (मालगुजारी) माफ कर दिया। उसका परिणाम बहुत अच्छा हुआ। इतने पर भी कितने ही लोग, देवी के शाप से, डर कर चटगाँव के पहाड़ी प्रदेश में भाग भाग कर जाने लगे। यहाँ तक कि खुद राजा के मन मे भी सन्देह होने लगा। उन्होने बिल्वन ठाकुर को बुला कर कहा—पुजारीजी, राजा ही के पाप से प्रजा को कष्ट हो रहा है। क्या मैंने देवी का बलिदान बन्द करके पाप किया है? क्या उसी का यह दण्ड है?

बिल्वन ठाकुर ने इन बातो को एक-दम उड़ा दिया और कहा—देवी के आगे जब हजार नरबलि दी जाती थी तब आपकी प्रजा की अधिक हानि होती थी या इस दुर्भिक्ष से अधिक हुई है?

राजा इसका कुछ उत्तर न दे सके, किन्तु उनके मन का सन्देह सम्पूर्ण रूप से दूर न हुआ। प्रजा उनसे अप्रसन्न है, उन पर सन्देह करती है, इन बातो की चोट उनके हृदय मे लगी है। यही क्यों, इन बातों से स्वय उनको अपने ऊपर सन्देह हो गया है। उन्होंने लबी साँस लेकर कहा—कुछ भी समझ मे नहीं आता।

बिल्वन ठाकुर ने कहा—ज्यादा समझने की जरूरत क्या है? चूहों के कितने ही दल आकर धान का नाश कर गये, इसका कारण नहीं समझा—इससे क्या? "मैं अन्याय न करूँगा, मैं सबकी भलाई करूँगा।" इतना समझ लेने ही से

सब हो गया । इसके बाद विधाता का जो काम है सो विधाता करेंगे । वे हम लोगो का हिसाब देने न आवेंगे ।

राजा ने कहा—तुम घर घर घूम कर बराबर अपने कर्तव्य का पालन कर रहे हो । जितना ही ससार का उपकार कर रहे हो उतना ही तुम धन्यवाद पा रहे हो । इस आनन्द में तुम्हारे सब सन्देह चले जाते हैं । मैं दिन रात माथे पर मुकुट रक्खे सिहासन पर बैठा रहता हूँ । केवल चिन्ता का बोझ मेरे सिर पर चढा रहता है । तुम्हारा काम देख देख कर मेरा जी तरसता है ।

बिल्वन ठाकुर ने कहा—महाराज, मैं तो आपही का एक अश हूँ । आप यदि इस सिहासन पर बैठ कर न विराजते तो मैं कौन काम कर सकता । आप और हम दोनो मिल कर तब पूरे हुए हैं ।

यह कह कर बिल्वन ठाकुर बिदा हुए । राजा माथे पर मुकुट रख कर सोचने लगे । उन्होंने मन ही मन कहा—मुझे अभी बहुत से काम करने हैं, पर मुझसे कुछ करते नहीं बनता । मैं अपनी चिन्ताओं को लेकर ही निश्चिन्त रहता हूँ । इसी कारण मैं अपने ऊपर प्रजा का विश्वास उत्पन्न नहीं करा सकता । मैं राज्यशासन के योग्य नहीं हूँ ।

———

इकतीसवाँ परिच्छेद

मुगल सेना के नायक होकर नक्षत्रराय रास्ते मे तेंतुल नाम की छोटी सी बस्ती मे ठहरे थे। सवेरे ही रघुपति ने आ कर कहा—अब यहाँ से प्रस्थान किया जाय, महाराज चलने के लिए तैयार हो।

रघुपति के मुँह से एकाएक महाराज शब्द बडा ही मीठा सुन पडा। नक्षत्रराय मारे खुशी के फूल उठे। कल्पना मे संसार के सभी लोगो के मुँह से उन्हे महाराज सम्भाषण सुनाई देने लगा। वे दरबार को जगमगाते हुए त्रिपुरा के ऊँचे सिहासन पर जा बैठे। उमङ्ग मे आकर बोले—पुरोहितजी, मैं आपको कभी अलग न होने दूँगा। आपको बराबर दरबार मे रहना होगा। आप क्या चाहते हैं—यही जरा मुझे कह सुनाइए।" नक्षत्रराय ने मन ही मन मानो खेलवाड की तरह रघुपति को तुरन्त जमीन का एक बडा हिस्सा जागीर दे डाला।

रघुपति ने कहा—मैं कुछ नहीं चाहता।

नक्षत्रराय ने कहा—यह न होगा। कुछ न कुछ आपको ग्रहण करना ही होगा। कयलासर नाम का परगना मैंने आपको दे दिया। आप मुझसे अभी लिखा लीजिए।

रघुपति ने कहा—ये बातें पीछे देखी जायँगी।

नक्षत्रराय—पीछे क्यों, मैं अभी देता हूँ। सारा कयला-

सर परगना आप ही का हुआ । मैं आपसे एक पैसा भी खजाना नहीं लूँगा । यह कह कर नक्षत्रराय सिर उठा कर और सीना तान कर बैठे ।

रघुपति—मरने के लिए तीन हाथ जमीन मिल जाने ही से मैं सुखी हूँ । मैं और कुछ नहीं चाहता—यह कह कर रघुपति चला गया । उसको जयसिंह का स्मरण हो आया । जयसिंह यदि रहता तो पुरस्कार-स्वरूप मैं कुछ ले भी लेता—जब जयसिंह नहीं है तब सारा त्रिपुरा राज्य रघुपति के लिए मिट्टी के ढेर के बराबर है ।

रघुपति अब नक्षत्रराय को राजमद से मत्त करने का प्रयत्न कर रहा है । उसके मन में यह डर है कि इतना आयोजन करके पीछे कहीं सब व्यर्थ न हो जाय । कहीं यह न हो कि, दुर्बल हृदय के नक्षत्रराय त्रिपुरा जाकर बिना युद्ध किये ही राजा के पास अपने को गिरफ्तार करा दे । किन्तु कमजोर दिल मे एक बार राज्यमद उत्पन्न हो जाय तो फिर कोई चिन्ता नहीं । रघुपति अब नक्षत्रराय को अवहेला की दृष्टि से नहीं देखता । बात बात में उनकी इज्जत करता है । सब बातों मे उनकी सलाह लेता है और उनका जबानी हुक्म लेकर सब काम करता है । मुगल सेना उनको महाराजा साहब कहती है, उन्हें देख कर सिपाही बड़ी आतुरता से उठ कर खड़े होते हैं—हवा तेज बहने से जिस तरह धानों के शीश झुक जाते हैं उसी तरह नक्षत्रराय को आते देख कर पंक्ति की पंक्ति

मुगल सेना सिर झुका कर सलाम करती है। सेनापति बड़ी इज्जत के साथ उन्हें लम्बा सलाम करते हैं। सैकड़ों खुली तलवारो के बीच ऊँचे हाथी की पीठ पर राजचिह्न से अङ्कित सुनहरे हौदे में बैठ कर वे प्रस्थान करते हैं। साथ साथ उत्साह-वर्धक बाजे बजते जाते हैं। राज-चिह्न-सूचक पताका फहराती हुई आगे आगे चलती है। वे जिस गाँव होकर जाते हैं उस गाव के लोग सेना के डर से घर द्वार छोड कर पहले ही भाग जाते हैं। उन लोगो को इस तरह डर कर भागते देख नक्षत्रराय के मन में गर्व का उदय हो आता था। उनके मन मे होता था कि मैं दिग्विजय करता चला जा रहा हूँ। छोटे छोटे जमींदार अनेक प्रकार के उपहार ले लेकर सामने हाजिर होते और सलाम करके चले जाते थे। नक्षत्रराय उन लोगों को पराजित राजा समझते हैं—और महाभारत के दिग्विजयी पाण्डवों की बात उन्हे याद आती है।

एक दिन सेना ने आकर और सलाम करके कहा—"महाराजा साहब" नक्षत्रराय तन कर बैठ गये।—हम लोग महाराज के लिए जान देने आये हैं। हम लोग जान की परवा नहीं रखते। हम लोगो का यह नियम हमेशा के लिए है कि जिस रास्ते से लड़ाई करने जाते हैं उस रास्ते के आस पास के गाँवों को लूटते जाते हैं—इसमें कोई दोष है, ऐसा किसी शास्त्र मे नहीं लिखा है।

नक्षत्रराय ने सिर हिला कर कहा—ठीक बात, ठीक बात।

सैनिको ने कहा—ब्राह्मण ने हम लोगों को लूट करने से रोका है। हम लोग जान देने जा रहे हैं और कुछ लूट पाट तक भी न करने पावेंगे, यह वडा ही वेइन्साफ है।

नक्षत्रराय फिर सिर हिला कर वोले—ठीक बात, ठीक बात।

"महाराज का हुक्म हो तो हम लोग ब्राह्मण की बात न मान कर लूट पाट करते चलें।"

नक्षत्रराय ने वडे गर्व से कहा—"ब्राह्मण कौन होते हैं। वे क्या जानते हैं। मैं तुम लोगो को हुक्म देता हूँ। तुम लोग मजे में लूट पाट करते चलो।" एक बार इधर उधर घूम कर देखा, किसी तरफ रघुपति को न देख कर निश्चिन्त हुए। रघुपति को इस प्रकार अकातर भाव से अतिक्रम करके वे अपने मन मे बहुत ही खुश हुए। प्रभुता का मद, मद्य की तरह, उनकी नस नस में फैलने लगा। वे ससार को नई दृष्टि से देखने लगे। कल्पित व्योमयान (वैलून) पर चढ कर मानो वे इस पृथ्वी को वहुत नीचे मेघ की तरह मलिन देखने लगे, यहाँ तक कि बीच बीच मे यदा कदा रघुपति को भी कुछ नहा समझते। वे एकाएक मद में मस्त होकर गोविन्दमाणिक्य के ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। मन ही मन वार बार कहने लगे—"मुझको देश-निकाले की सजा! मुझको साधारण प्रजा की तरह कचहरी मे खडा किया! अब की बार देखता हूँ, कौन किसे निर्वासित करता है। इस बार त्रिपुरा की सारी प्रजा को

मुगल सेना सिर झुका कर सलाम करती है। सेनापति बड़ी इज्जत के साथ उन्हें लम्बा सलाम करते हैं। सैकड़ों खुली तलवारों के बीच ऊँचे हाथी की पीठ पर राजचिह्न से अङ्कित सुनहरे हौदे में बैठ कर वे प्रस्थान करते हैं। साथ साथ उत्साह-वर्धक बाजे बजते जाते हैं। राज-चिह्न सूचक पताका फहराती हुई आगे आगे चलती है। वे जिस गाँव होकर जाते हैं उस गाँव के लोग सेना के डर से घर द्वार छोड़ कर पहले ही भाग जाते हैं। उन लोगों को इस तरह डर कर भागते देख नक्षत्रराय के मन मे गर्व का उदय हो आता था। उनके मन मे होता था कि मैं दिग्विजय करता चला जा रहा हूँ। छोटे छोटे जमींदार अनेक प्रकार के उपहार ले लेकर सामने हाजिर होते और सलाम करके चले जाते थे। नक्षत्रराय उन लोगों को पराजित राजा समझते हैं—और महाभारत के दिग्विजयी पाण्डवों की बात उन्हें याद आती है।

एक दिन सेना ने आकर और सलाम करके कहा—"महाराजा साहब" नक्षत्रराय तन कर बैठ गये।—हम लोग महाराज के लिए जान देने आये हैं। हम लोग जान की परवा नहीं रखते। हम लोगो का यह नियम हमेशा के लिए है कि जिस रास्ते से लड़ाई करने जाते हैं उस रास्ते के आस पास के गाँवों को लूटते जाते हैं—इसमे कोई दोष है, ऐसा किसी शास्त्र मे नहीं लिखा है।

नक्षत्रराय ने सिर हिला कर कहा—ठीक बात, ठीक बात।

सैनिको ने कहा—ब्राह्मण ने हम लोगो को लूट करने से रोका है। हम लोग जान देने जा रहे हैं और कुछ लूट पाट तक भी न करने पावेंगे, यह वडा ही वेइन्साफ है।

नक्षत्रराय फिर सिर हिला कर बोले—ठीक बात, ठीक बात।

"महाराज का हुक्म हो तो हम लोग ब्राह्मण की बात न मान कर लूट पाट करते चले।"

नक्षत्रराय ने बडे गर्व से कहा—"ब्राह्मण कौन होते हैं। वे क्या जानते हैं। मैं तुम लोगो को हुक्म देता हूँ। तुम लोग मजे मे लूट पाट करते चलो।" एक बार इधर उधर घूम कर देखा, किसी तरफ रघुपति को न देख कर निश्चिन्त हुए। रघुपति को इस प्रकार अकातर भाव से अतिक्रम करके वे अपने मन मे बहुत ही खुश हुए। प्रभुता का मद, मद्य की तरह, उनकी नस नस में फैलने लगा। वे ससार को नई दृष्टि से देखने लगे। कल्पित व्योमयान (वैलून) पर चढ कर मानो वे इस पृथ्वी को वहुत नीचे मघ की तरह मलिन देखने लगे, यहाँ तक कि वीच वीच मे यदा कदा रघुपति को भी कुछ नहा समझते। वे एकाएक मद में मस्त होकर गोविन्दमाणिक्य के ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। मन ही मन बार बार कहने लगे—"मुझको देश-निकाले की सजा! मुझको साधारण प्रजा की तरह कचहरी मे खडा किया! अब की बार देखता हूँ, कौन किसे निर्वासित करता है। इस बार त्रिपुरा की सारी प्रजा को

नक्षत्रराय का प्रताप मालूम हो जायगा।" नक्षत्रराय मारे गर्व के फूल उठे। बेचारे निरपराधी गाँववालो पर व्यर्थ अत्याचार और लूट पाट से रघुपति को बडी नफरत थी। उसने इन बातो को रोकने के लिए बहुत उपाय किये। किन्तु मुग़ल सेना ने नक्षत्रराय की आज्ञा पाकर रघुपति की बातों पर ध्यान न दिया। आखिर रघुपति ने नक्षत्रराय से जाकर कहा—इन बेचारे असहाय गाँववालो पर यह अत्याचार क्यो ?

नक्षत्रराय ने कहा—तुम इन बातो को क्या समझो। युद्ध के अवसर पर सेना को लूट पाट से रोक कर हतोत्साह करना ठीक नहीं।

नक्षत्रराय की बात सुन कर रघुपति कुछ अचम्भे मे आ गया। एकाएक नक्षत्रराय का ऐसा महत्त्वाभिमान देख कर वह मन ही मन हँसा और प्रकटरूप से कहने लगा—अभी लूट पाट करने देने से पीछे इन लोगो को सँभालना कठिन होगा। ये लोग सारे त्रिपुरा को लूट लेगे।

नक्षत्रराय ने कहा—उसमे हानि ही क्या ? मैं तो यही चाहता हूँ। त्रिपुरा एक बार समझे तो कि नक्षत्रराय को देश से निकालने का फल क्या हुआ। तुम इस विषय मे कुछ नहीं समझते। तुमने युद्ध ही कब किया है जो इन बातो को समझोगे ?

इस बात को सुन कर रघुपति मन ही मन बहुत प्रसन्न हुआ। नक्षत्रराय की बातो का कुछ उत्तर न देकर वह चला

गया। उसकी इच्छा यही थी कि नक्षत्रराय बिलकुल काठ के पुतले की तरह न रहे, वे कुछ चातुर्य भी सीखे।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

त्रिपुरा में जब चूहों का उपद्रव शुरू हुआ था तब सावन का महीना था। खेतों में केवल मकई फल चुकी थी और पहाड़ी जमीन में धान पकने लग गया था। तीन महीने किसी तरह कट गये। अगहन के महीने में जब धान काटने का समय आया तब देश में सर्वत्र आनन्द छा गया। किसान* लोग स्त्री, बालक, युवा और वृद्धों के साथ मिल कर हाथ में, हँसुआ लिये अपने अपने खेत में जा पहुँचे। बड़े मीठे सम्बोधन से एक दूसरे को पुकार रहा है। किसानों की स्त्रियाँ रास्ते में, मैदान में, झुण्ड बाँध बाँध कर गाने लगीं। राजा पर जो प्रजा का असन्तोष था वह दूर हो गया। राज्य में सर्वत्र शान्ति छा गई। ऐसे समय खबर आई कि नक्षत्रराय राज्य हड़पने की इच्छा से असख्य सेना को साथ लिये त्रिपुरा राज्य की सीमा पर आ पहुँचे हैं। सेना ने विशेष रूप से लूट पाट और प्रजा पर अत्याचार करना शुरू कर दिया है। इस खबर से सारा देश काँप उठा।

---

* वास्तव में ये लोग किसान नहीं कहे जा सकते, क्योंकि ये लोग यथाविधि खेती नहीं करते। जङ्गल जला कर वर्षा के आरम्भ में केवल बीज बखेर देते है। इस तरह की खेती को जूम कहते हैं और खेतिहरों को जूमिया।

यह खबर राजा के हृदय में छुरी की तरह चुभ गई। दिन भर यों ही चुभती रही। ठहर ठहर कर हर एक वार नई बात की तरह उनके मन में स्मरण होने लगा कि नक्षत्रराय हमारे ऊपर आक्रमण करने आ रहे हैं। वे नक्षत्रराय के उस स्वाभाविक सुन्दर मुखड़े को बार बार अपने नेह-भरे नेत्रों के सम्मुख देखने लगे। उसी के साथ साथ यह भी मन में होने लगा कि वही नक्षत्रराय बड़ी भारी सेना के साथ हाथ में तलवार लिये हम पर आक्रमण करने के लिए आ रहे हैं। वे मन में कहने लगे—"साथ में एक सिपाही तक न लेकर नक्षत्रराय के सामने उस बड़े युद्ध-क्षेत्र में छाती फैला कर खड़े हो जायँ और नक्षत्रराय के सहस्रश सैनिकों की तलवारें एक साथ हमारे हृदय का रक्तपान करें।" उन्होंने ध्रुव को अपने पास खींच कर कहा—"ध्रुव, क्या तू भी इस मुकुट के लिए मेरे साथ झगड़ा करेगा?" मुकुट को धरती पर फेंक दिया। एक मोती का बड़ा दाना टूट कर गिर पड़ा।

ध्रुव ने हौसले के साथ हाथ बढ़ा कर कहा—मैं लूँगा।

राजा ने ध्रुव के सिर पर मुकुट रख कर और उसे गोद में बैठा कर कहा—"यह लो, मैं किसी के साथ झगड़ा करना नहीं चाहता।" यह कह कर उन्होंने बड़े चाव से ध्रुव को छाती से लगा लिया। इसके बाद सारा दिन "यह केवल मेरे पाप का फल है"—कह कर राजा अपने आत्मा के साथ विवाद करने लगे। पाप का उदय हुए बिना भाई कभी भाई के ऊपर

आक्रमण नहीं कर सकता। इसी बात को मन मे मान कर उन्हें कुछ धैर्य हुआ। उन्होंने मान लिया कि यह ईश्वर की प्रेरणा है। ईश्वर के दरबार से ऐसी ही आज्ञा आई है।

"नक्षत्रराय का क्या सामर्थ्य है कि उस आज्ञा का उल्लङ्घन कर सके।" यही मान कर उनके टूटे दिल को कुछ सन्तोष मिला। वे अपने ही माथे पाप चढाने को राजी हैं। इससे नक्षत्रराय के ऊपर से मानो कितने ही पाप का भार टल गया।

बिल्वन ठाकुर ने आकर कहा—यह समय क्या आकाश की ओर देख कर सोचने का है ?

राजा ने कहा—ये सब मेरे पाप के फल हैं।

बिल्वन ने कुछ रुष्ट होकर कहा—महाराज, इन बातों के सुनने से मैं अधीर हुआ जाता हूँ। यह किसने कहा है कि दु ख पाप का ही फल है। धर्म का फल भी दु ख हो सकता है। कितने ही धर्मात्मा लोगो ने दु ख में ही अपना जीवन विताया है। धर्म का फल सुख नहीं है। धर्म का फल धर्म ही है।

राजा ने इसका कुछ जवाब न दिया।

बिल्वन ठाकुर ने कहा—महाराज ने क्या कुछ पाप किया था, जिससे यह घटना हुई है ?

राजा ने कहा—अपने भाई को देश से निकाल दिया था।

बिल्वन ठाकुर ने कहा—आपने अपने भाई को नहीं निकाला, बल्कि अपराधी को निर्वासित किया है।

राजा ने कहा—दोषी होने पर भी भाई को निकालने का पाप अवश्य है। उस पाप का फल कुछ न कुछ अवश्य ही होगा। यद्यपि दुर्योधन आदि दुराचारी थे तथापि उन्हे मार कर पाण्डव शान्तिपूर्वक राज्य को सुख से नहीं भोग सके। पीछे यज्ञ करके उस पाप का प्रायश्चित्त किया। पाण्डवो ने लड कर जीते जी कौरवो का राज्य प्राप्त कर लिया और कौरवो ने मर कर ही पाण्डवो का राज्य हरण किया, अर्थात् बन्धु-वियोग से व्यथित होकर पाण्डव राज्य का उपभोग न कर सके। मैंने नक्षत्र को निकाला है, अब वह मुझको निकालने आ रहा है।

बिल्वन ने कहा—पाण्डवो ने पाप की शान्ति के लिए कौरवो के साथ युद्ध नहीं किया था। उन लोगो ने तो राज्य पाने ही के लिए युद्ध ठाना था। किन्तु महाराज ने पाप को शान्त करने के लिए अपने सुख-दु ख का कुछ विचार न करके धर्म का पालन किया है। इसमें पाप की बात तो मैं कुछ भी नहीं देखता। यदि आप इसे पाप ही समझते हो तो प्रायश्चित्त की व्यवस्था देने मे मुझे कोई उज्र नहीं। मैं ब्राह्मण हूँ। मुझे सन्तुष्ट कर देने ही से पाप का प्रायश्चित्त हो जायगा।

राजा मुसकुरा कर चुप हो रहे। बिल्वन ठाकुर ने कहा—जो हो, अभी युद्ध की तैयारी कीजिए। अब विलम्ब करना ठीक नहीं।

राजा ने कहा—मैं युद्ध न करूँगा।

विल्वन ठाकुर ने कहा—यह कैसे होगा । आप बैठे बैठे सोचा करें । मैं अभी सेना समह करने जाता हूँ ।

इस समय सब प्रजा अपने अपने खेत पर गई है । अभी पूरे तौर से सैनिकों का मिलना कठिन है । यह कह कर और किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही विल्वन ठाकुर चले गये ।

न जाने एकाएक ध्रुव के मन में क्या हो आया कि उसने राजा के पास आकर और उनके मुँह की ओर देख कर पूछा—काका कहाँ हैं ?

राजा ने कहा—"काका आ रहे हैं" । उनकी आखों में आँसू भर आये ।

तेंतीसवाँ परिच्छेद

विल्वन ठाकुर के सिर पर भारी काम आ पड़ा । उन्होंने चटगाँव के पहाडी प्रदेश मे भाँति भाँति के उपहारों के साथ दूत भेजे और कूकी जाति के प्रधान के पास कहला भेजा कि कूकी सेनाओं के द्वारा आप आकर सहायता करें । युद्ध का नाम सुन कर वे लोग मारे खुशी के उछल पडे । कूकी जाति के जितने लाल (प्रधान) थे, उन सबने युद्ध-सवाद-सूचक हँसुआ लाल कपड़े मे लपेट कर दूतों के हाथ गाँव गाँव मे भेज दिया । देखते ही देखते कूकी-सेना के दल चटगाँव के पहाड से त्रिपुरा के पहाड पर आ पहुँचे । उन लोगों को

किसी नियम का पाबन्द करके रखना कठिन है। बिल्वन ठाकुर ने स्वय त्रिपुरा के गॉव गाँव मे जाकर अच्छे अच्छे हट्टे कट्टे साहसी जवानो को चुन चुन कर सेना में भरती किया। बिल्वन ठाकुर ने आगे बढ कर मुग़ल सेना पर आक्रमण करना उचित नहीं समझा। उन्होने यही सोचा कि जब वे लोग समतल भूमि को पार करके कुछ कठिन पहाडी रास्ते में आवेगे तब जङ्गल और पहाड के अनेक गुप्त स्थानों से एकाएक उन पर आक्रमण करके उन्हे चकित कर डालेगे। उन्होंने अपनी हार होने की बात सोच कर बडे बडे पत्थरो से नदी का पानी रोक लिया। यह इसलिए कि जब मुगल सेना नदी के पास आवेगी तब इसी पानी के द्वारा उसे बहा देंगे।

इधर नचत्रराय देश को लूटते हुए त्रिपुरा के पहाडी प्रदेश मे आ पहुँचे। धान की कटाई ख़तम हो चुकी है। सभी किसान तीर कमान लेकर लडने के लिए तैयार हैं। कूकीसेना उमडने पर उतारू हो गई। झरने की जलराशि की तरह अब रोकने पर भी नहीं रुकती।

गोविन्दमाणिक्य ने कहा—मैं युद्ध न करूँगा।

बिल्वन ठाकुर—महाराज, आप यह क्या कह रहे हैं।

राजा—"मैं राज्य करन योग्य नहीं। उसी के ये लक्षण दिखाई दे रहे है। इसी से प्रजा की श्रद्धा मुझ पर से उठ गई। इसी से अकाल की घोषणा हुई और इसी कारण यह युद्ध की

सम्भावना हो रही है । राज्य छोड देने के हेतु ये सब भगवान् के आदेश हैं ।

बिल्वन ने कहा—ये कभी भगवान् के आदेश नहीं । ईश्वर ने राज्य का भार तुम्हारे हाथ सौंपा है । जितने दिनों तक राज-काज निर्विवाद था उतने दिनों तक तुमने अपने सहज कर्तव्य का पालन किया । जब राज्य का बोझ कुछ भारी हो उठा है तब तुम उसे दूर पटक कर स्वाधीन होने के लिए ईश्वर की आज्ञा कह कर लोगों को भुलावा देते हो और अपने को सुखी करना चाहते हो ।

यह बात गोविन्दमाणिक्य के मन में चुभ गई । वे चुप होकर कुछ देर बैठे रहे, तदनन्तर अधीर होकर बोले—मान लो कि मेरी हार हुई और नक्षत्रराय मुझको मार कर राजा हुए तो ।

बिल्वन—यदि वास्तव में यही घटना होगी तो महाराज के लिए सोच न करूँगा, किन्तु महाराज यदि अपने कर्तव्य से विमुख होकर भाग जायँगे तो हम लोगों को अवश्य खेद होगा ।

राजा कुछ कातर होकर बोले—अपने भाई का रक्तपात करूँ ?

बिल्वन—कर्तव्य के आगे भाई-बहन कोई नहीं । कुरुक्षेत्र की लड़ाई के वक्त श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन को क्या उपदेश दिया था ? याद है ?

राजा—तुम्हारा अभिप्राय यही है न कि मैं अपने हाथ में तलवार लेकर नक्षत्रराय को मारूँ ?

बिल्वन—हाँ ।

ध्रुव ने अचानक आकर बड़ी गम्भीरता से कहा—"छि यह बात न कहो" । ध्रुव खेल रहा था । उन दोनों का वा प्रतिवाद सुन कर उसने समझा कि ये दोनों आपस में झग रहे हैं । अतएव ऐसे मौके पर उन दोनों को डॉटना जरूरी है— यह सोच कर उसने सहसा वहाँ आकर और सिर हिला क कहा—छि. यह बात न कहो ।

बिल्वन ठाकुर को उसकी यह बात सुन कर बड़ा ही ह‍ हुआ । वे हँस पड़े और ध्रुव को गोद मे बैठा कर उसक मुँह चूमने लगे । राजा को हँसी न आई । उनको ऐसा लगा मानो हमने उस बालक के मुँह से देववाणी सुनी है । वे संशय- रहित स्वर मे बोले—मैंने निश्चय कर लिया है । मैं रक्तपात का प्रसङ्ग न आने दूँगा । मैं युद्ध कदापि न करूँगा ।

बिल्वन ठाकुर कुछ देर चुप रहे । आखिर उन्होंने कहा— यदि महाराज युद्ध करना नहीं चाहते तो और ही काम करें । नक्षत्रराय से मिल कर आप उन्हे युद्ध करने से रोकें ।

बिल्वन ठाकुर की इस राय को गोविन्दमाणिक्य ने पसन्द किया ।

बिल्वन ठाकुर ने कहा—इस विषय का एक पत्र लिख कर नक्षत्रराय के पास भेजा जाय । अन्त मे यही बात निश्चित हुई ।

चौंतीसवाँ परिच्छेद

नक्षत्रराय सेना सहित आगे बढने लगे। कहीं कुछ विघ्न न हुआ। त्रिपुरा के जिस गाँव में वे गये वहाँ सब लोगों ने राजा मान कर उनका मान किया। पग पग पर वे राजत्व-पद का अनुभव करने लगे। तृष्णा की मात्रा उन्हें उत्तरोत्तर अधिक बढने लगी। वे समझने लगे कि चारों ओर के लम्बे चौड़े खेत, गाँव, पहाड़ और नदी आदि सब मेरे हैं। उस अधिकार-व्याप्ति के साथ ही साथ वे अपने को बहुत बडा प्रतापी मानने लगे। मुगल सेना जब जो चाहती थी तभी आप उनके लिए वैसा हुक्म दे देते थे। वे समझते थे कि वे मेरे ही हैं और मेरे राज्य में आ गये हैं। इन लोगों को किसी सुख से वञ्चित करना ठीक नहीं। मुगल सेना जब अपने देश को लौट कर जायगी तब हमारी खातिरदारी की, उदारता की और विशेष दानशीलता की बहुत बहुत तारीफ करेगी, और कहेगी—"त्रिपुरा के राजा कुछ ऐसे वैसे नहीं हैं।" मुगलसेना से वाहवाही लूटने के लिए वे हमेशा ही उत्सुक रहा करते थे। वे लोग नक्षत्रराय के सम्बन्ध में जब किसी तरह का कर्णमधुर सम्भाषण करते थे तब वे पानी पानी हो जाते थे। उन्हें हमेशा इस बात का भय लगा रहता था कि कहीं पीछे किसी तरह की मेरी शिकायत न हो।

रघुपति ने विस्मित होकर कहा—युद्ध की कोई तैयारी देखने में नहीं आती।

नक्षत्रराय—"डर गये मालूम होता है" कह कर खूब जोर से हँसने लगे।

रघुपति ने हँसने का कोई विशेष कारण नहीं देखा तो भी वह हँसने लगा।

नक्षत्रराय ने कहा—नक्षत्रराय नवाब की सेना लेकर आये हैं, यह कुछ साधारण बात नहीं है।

रघुपति—देखिए, इस बार कौन किसे निर्वासित करता है?

नक्षत्रराय—मैं चाहूँ तो देश-निकाले की सजा दे सकता हूँ, कैद भी कर सकता हूँ और फाँसी भी दे सकता हूँ। क्या करूँगा, अभी कुछ निश्चय नहीं किया है।—यह कह कर वे बडे विज्ञभाव से गौर करने लगे।

रघुपति—महाराज, आप इतना सोच विचार न करें। अब भी बहुत वक्त है, लेकिन मुझे डर है कि कहीं गोविन्दमाणिक्य बिना युद्ध किये ही आपको पराजित न कर दे?

नक्षत्रराय—सो क्यों कर होगा?

"गोविन्दमाणिक्य अपनी सेना को किसी जगह छिपा रक्खेंगे और विशेषरूप से भ्रातृस्नेह दिखला कर आपको गले लगा कर कहेंगे—'मेरे छोटे भैया, चलो, घर चलो, चल कर मक्खन मिश्री खाओ।' तब महाराज रो कर कहेंगे—'जो आपकी आज्ञा, मैं अभी चलता हूँ। देर करने की जरूरत क्या।' यह कह कर तुरन्त नागोरी जूते पहन कर भाई जी के पीछे पीछे

सिर नीचा करके टट्टू की तरह चल देंगे । बादशाह की मुगल सेना यह तमाशा देख कर हँसते हँसते घर लौट जायगी।"

रघुपति के मुँह से यह उत्कट परिहास सुन कर नक्षत्रराय बड़े ही अधीर हुए। हँसने की चेष्टा की पर हँस न सके। उन्होंने कहा—क्या उन्होंने मुझे छोटा सा बच्चा समझ रक्खा है जो इस तरह ठग लेंगे । ऐसा कभी न होने पावेगा ।

उसी दिन गोविन्दमाणिक्य की चिट्ठी लेकर एक दूत नक्षत्र-राय के खेमे में आ पहुँचा। वह चिट्ठी रघुपति के हाथ लगी। उसने उसे खोल कर पढ़ा। राजा (गोविन्दमाणिक्य) ने विशेष प्रेम भाव प्रकट करके भेंट के लिए प्रार्थना की है। रघुपति ने नक्षत्रराय को चिट्ठी न देखने दी। उसने दूत को यह कह कर विदा कर दिया कि गोविन्दमाणिक्य को तकलीफ उठा कर इतनी दूर आने की जरूरत नहीं। महाराज नक्षत्रराय अपनी सेना और तलवार लेकर शीघ्र ही उनसे मिलेंगे। इतने ही थोड़े समय में मानो भाई की जुदाई से वे अधिक अधीर हो गये हैं। आठ वर्ष तक इनकी जुदाई को वे कैसे सहन करते ?

रघुपति ने नक्षत्रराय से जाकर कहा—गोविन्दमाणिक्य ने अपने निर्वासित छोटे भाई को एक अत्यन्त प्रेमपरिपूर्ण पत्र भेजा है।

नक्षत्रराय ने बड़ी अवहेला का भाव व्यञ्जित करते हुए हँस कर कहा—"क्या सचमुच चिट्ठी भेजी है ? कहाँ है ? देखें ।" यह कह कर उन्होंने चिट्ठी लेने के लिए हाथ बढ़ाया

रघुपति—मैंने वह पत्र महाराज को दिखलाना आवश्यक नहीं समझा। पत्र पढ़ कर उसी वक्त उसे फाड कर फेंक दिया और उनके दूत से कह दिया कि लडाई के सिवा इसका और कोई जवाब नहीं।

नक्षत्रराय ने जरा हँस कर कहा—तुमने कहा है, लडाई के सिवा इसका और कोई जवाब नहीं। अच्छा जवाब कहला भेजा है।

रघुपति—यह उत्तर सुन कर गोन्दमाणिक्य सोचेंगे कि जब राज्य से निकाल दिया था तब तो मेरा भाई बडे ही सीधे तौर से चला गया था किन्तु वही भाई घर लौट आने के वक्त आज भारी बखेडा कर रहा है।

नक्षत्रराय—हाँ, अब समझेंगे कि मेरा भाई साधारण मनुष्य नहीं है। जब जी चाहेगा निकाल देंगे और जब जी में आवेगा बुला लेंगे, सो अब न होगा। यह कह कर वे बडी खुशी के साथ हँसने लगे।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

नक्षत्रराय का कोरा जवाब सुन कर गोविन्दमाणिक्य बडे ही मर्माहत हुए। विल्वन ठाकुर ने मन में सोचा कि महाराज अब युद्ध में असम्मति प्रकट न करेंगे।। किन्तु गोविन्दमाणिक्य ने कहा—यह बात नक्षत्रराय की कही हुई

नहीं है। यह बात उस पुरोहित ने कहला भेजी है। नक्षत्र के मुँह से ऐसी बात कभी नहीं निकल सकती।

बिल्वन—महाराज की राय अब क्या होती है?

राजा—मैं नक्षत्र को किसी तरह एक बार देख लेता तो सब बखेडो को ठडा कर देता।

बिल्वन—अगर मुलाकात न हो?

राजा—तो मैं राज्य छोड कर चला जाऊँगा।

बिल्वन—अच्छा, मैं एक बार कोशिश करके देखता हूँ।

पहाड के ऊपर नक्षत्रराय का खेमा खडा है। चारो ओर घना जगल है। कहीं बाँस का वन, कहीं बेंत का वन और कहीं सरकण्डे का वन है। धरती अनेक प्रकार के पौदो और लताओ से ढकी है। जगली हाथी आदि जानवरों के चलने के रास्ते का लक्ष्य करके सैन्यगण जैसे तैसे बडे कष्ट से पहाड पर चढ आये हैं। थोडा सा दिन बाकी है। सूर्य भगवान् पहाड के पच्छिमी भाग मे उतर आये हैं। पूरब के भाग में छाँह रहने के कारण अँधेरा सा हो गया है। सूर्य अस्त होने के समय के धुँधलेपन और वृक्षों की छांह ने मिल कर असमय मे ही जगल के भीतर साँझ कर दी है। जाडे के दिनो मे, शाम के वक्त, जैसे धरती से कुहरा उठता है उसी तरह धरती से भाप निकल रही है। झिल्लियों की झनकार से निस्तब्ध वन शब्दायमान होने लगा है। बिल्वन जब खेमे में पहुँचे तब सूर्यास्त हो चुका था। किन्तु पच्छिम की ओर

आकाश मे सुनहरी लकीरें अभी तक कुछ कुछ दिखाई दे रही हैं। पच्छिम ओर समतल पहाडी भूमि में जो घना श्यामल वन है वह, उन सुनहरी लकीरों की छाया पडने से, हरे रङ्ग के स्थिर समुद्र की तरह देख पड़ता है। मुगलसेना कल तडके यहाँ से आगे बढेगी। सेना के एक दल और सेनापति को साथ लेकर रघुपति रास्ता ढूँढने बाहर गया है, अभी तक लौटा नहीं। यद्यपि रघुपति के परोक्ष में भी नक्षत्रराय के पास गैर शख्स को न जाने देने की सख्त ताकीद थी तथापि सन्यासी जान कर बिल्वन को किसी ने नहीं रोका। बिल्वन ने नक्षत्रराय के पास जाकर और यह कह कर कि—"महाराज गोविन्दमाणिक्य ने आपको यह पत्र लिख कर स्मरण किया है" नक्षत्रराय के हाथ में पत्र दिया। नक्षत्रराय ने थरथराते हुए हाथ से पत्र लिया। पत्र खोलते समय उन्हें लज्जा और भय होने लगा। गोविन्दमाणिक्य और उनके बीच मे व्यवधान होकर जितनी देर तक रघुपति, खडा रहता था उतनी देर तक वे सर्वथा निश्चल रहते थे, मानो अब वे किसी तरह गोविन्दमाणिक्य को देखना नहीं चाहते। गोविन्दमाणिक्य का यह दूत एक-दम नक्षत्रराय के सामने आकर खडा हो गया। इस कारण वे लज्जित हो गये और मन ही मन कुछ कुढे भी। उनके मन मे आया कि अगर रघुपति वहाँ मौजूद होता तो हर्गिज इस दूत को मेरे पास न आने देता। देर तक मन में सोच विचार कर आखिर पत्र खोला। गोविन्दमाणिक्य

ने उन्हें भर्त्सना की एक बात भी नहीं लिखी । उस पत्र में एक बात भी उनको लजानेवाली नहीं । गोविन्द-माणिक्य ने उन पर जरा भी जोर जाहिर नहीं किया। नक्षत्रराय जो सैन्य लेकर उन पर आक्रमण करने आ रहे हैं—इस बात की कहीं चर्चा तक नहीं । दोनो भाइयो में पहले जिस प्रकार का भाव था मानों वही भाव अब भी वैसा ही बना है । सारे पत्र मे केवल गहरे स्नेह और गहरे विषाद का भाव भरा है। स्नेह और विषाद में किसकी मात्रा अधिक है, यह उन्हे स्पष्ट रूप से नहीं जान पडता। इन प्रेम-विषाद से भरी बातों से नक्षत्रराय के हृदय में बडा धक्का लगा । चिट्ठी पढते पढते उनके मन का भाव धीरे धीरे बदलने लगा । हृदय पर जो पत्थर का परदा पडा था वह चूर चूर हो गया। उनके मुँह पर उदासी छा गई, हाथ काँपने लगे, साथ ही साथ चिट्ठी भी काँपने लगी । नक्षत्रराय ने कुछ देर उस चिट्ठी को माथे पर रक्खा, और बार बार पढा। उस चिट्ठी में जो भाई का आशीर्वाद था वह मानों ठंडे झरने के जलप्रपात की तरह उनके सन्तप्त हृदय पर गिरने लगा । वे बड़ी देर तक क्षुब्ध हो कर सायंकाल की लालिमा से सुशोभित दूरस्थ श्यामल वन-भूमि की ओर एकटक दृष्टि से देखने लगे । चारो ओर शान्तिमयी सन्ध्या निश्शब्द शान्त समुद्र की तरह शोभा-यमान हो रही है । देखते ही देखते उनकी आँखें डबडबा आई, और बडे वेग से आँसु बह चले । नक्षत्रराय ने सहसा लज्जा

और पश्चात्ताप से अधीर होकर दोनों हाथों से मुँह ढक लिया और रोकर कहा—मैं यह राज्य नहीं चाहता। भाई साहब मेरे सब अपराधों को क्षमा करके अपने चरणों के निकट शरण दें, मुझे अपने पास रहने दें, मुझे दूर न भगावें।

बिल्वन कुछ न बोले। चुपचाप बैठे हुए स्निग्ध हृदय से और स्नेहभरी आँखों से उनका मुँह देखते रहे। आखिर जब नक्षत्रराय कुछ देर में प्रकृतिस्थ हुए तब बिल्वन ने कहा—गोविन्दमाणिक्य आपके इन्तजार में बैठे हैं, चल कर उनसे मिलिए। अब विलम्ब न कीजिए।

नक्षत्रराय ने कहा—क्या वे मुझे क्षमा करेंगे?

बिल्वन—युवराज के ऊपर वे जरा भी नाराज नहीं हैं। अधिक रात बीतने से रास्ते में तकलीफ होगी। एक घोड़ा ले लिया जाय। पहाड़ के नीचे महाराज के आदमी आपको साथ ले चलने के लिए खड़े हैं।

नक्षत्रराय—मैं छिप कर जाऊँगा। सेना पर यह बात प्रकट न होने दूँगा। अब देर करने का प्रयोजन क्या। जहाँ तक जल्द यहाँ से निकल पड़ें उतना ही अच्छा है।

बिल्वन—बहुत ठीक।

"मैं तीनमूड़ा पहाड़ पर सन्यासी के साथ शिवजी की पूजा करने जाता हूँ" यह कह कर नक्षत्रराय घोड़े पर चढ़े और सन्यासी के साथ विदा हुए। नौकरों ने साथ जाना चाहा पर नक्षत्रराय ने उन्हें मना कर दिया।

अभी बाहर हुए ही थे कि इतने ही में घोड़ों की टापों और सेना के आने की आहट मिली। नक्षत्रराय बड़े ही लज्जित हुए। देखते ही देखते रघुपति सेना के साथ आ पहुँचा। आते ही उसने विस्मित होकर पूछा—"महाराज, कहाँ जा रहे हैं?" नक्षत्रराय कुछ जवाब नहीं दे सके।

नक्षत्रराय को चुप देख कर बिल्वन ने कहा—महाराज गोविन्दमाणिक्य से मुलाकात करने जाते हैं।

रघुपति ने बिल्वन को एक बार सिर से पैर तक देखा, भौंहे सिकोड़ीं, तदनन्तर अपने को सँभाल कर कहा—आज ऐसे बेवक्त हम लोग अपने महाराज को जाने नहीं देंगे। इतना आतुर होने का प्रयोजन क्या। कल सवेरे ही चले जायँगे। महाराज की क्या इच्छा है?

नक्षत्रराय ने धीरे से कहा—हाँ, कल सवेरे ही जाऊँगा। आज तो रात हो गई।

बिल्वन ठाकुर निराश होकर लौटे और उस रात को उन्हीं लोगों के साथ खेमे में रहे। सवेरा होने पर नक्षत्रराय के पास जाना चाहा तो पहरेदारों ने रोक दिया। उनके खेमे के चारों ओर पहरा है किसी तरफ से जाने का रास्ता नहीं। आखिर रघुपति के पास जाकर उन्होंने कहा—जाने का समय हो गया, युवराज को खबर दीजिए।

रघुपति—महाराज नहीं जायँगे। वे निश्चय कर चुके हैं।

बिल्वन—मैं उनसे एक बार मिलना चाहता हूँ।

रघुपति—मुलाकात नहीं होगी। उन्होंने कहला भेजा है।

बिल्वन—महाराज गोविन्दमाणिक्य के पत्र का उत्तर मिलना चाहिए।

रघुपति—पत्र का उत्तर पहले एक बार दिया जा चुका है।

बिल्वन—मैं उनके मुँह से उत्तर सुनना चाहता हूँ।

रघुपति—इसका कोई उपाय नहीं है।

बिल्वन ठाकुर समझ गये कि समय बिताने और वाक्यव्यय करने के सिवा कुछ फल न होगा। उन्होने चलते वक्त रघुपति से कहा—ब्राह्मण, क्या तुम सर्वनाश करना चाहते हो? यह ब्राह्मणों का काम नहीं है।

छत्तीसवाँ परिच्छेद

बिल्वन ठाकुर जब नक्षत्रराय के खेमे से लौट आये तब उन्होने देखा कि राजा ने बहुत कुछ धन देकर कूकी जाति की सेना को बिदा कर दिया है। लड़ाई में विलम्ब होते देख वे लोग देश में जहाँ तहाँ उपद्रव करने लग गये थे। त्रिपुरा की सेना भी राजा के आज्ञानुसार अपने अपने घर चली गई। युद्ध की कोई तैयारी देखने मे न आई। बिल्वन ने वहाँ का सब हाल राजा से कहा।

राजा ने कहा—मैं अब बिदा होता हूँ। नक्षत्र के लिए और धन छोड़े जाता हूँ।

विल्वन—तुम असहाय प्रजा को दूसरे के हवाले कर भागना चाहते हो। इस तरह भाग जाने की सलाह मैं प्रसन्न-म से कभी नहीं दे सकता। माता अपने पुत्र को सौत के हाथ सौंप कर निश्चिन्त होना चाहे, यह कभी सम्भव है?

राजा—तुम्हारी बात मेरे हृदय में चुभ जाती हैं। क्षम करो। मुझसे अब और कुछ न कहो। मुझको अपने सिद्धान से विचलित करने का प्रयत्न न करो। तुम जानते हो, मैं प्रतिज्ञा की थी कि मैं रक्तपात न करूँगा। मैं उस प्रतिज्ञा को भङ्ग नहीं कर सकता।

विल्वन—तो महाराज अब क्या करना चाहते हैं?

राजा—सुनो, मैं तुमको सब सुनाता हूँ। मैं ध्रुव को साथ लेकर जंगल मे जाऊँगा। मेरा जीवन बिलकुल अधूरा रहा। मैंने जो जो काम करने का विचार किया था अभी तक कुछ न कर सका। जिन्दगी का जितना हिस्सा गुजर गया है वह किसी प्रकार लौट नहीं सकता। मैं समझता हूँ कि अदृष्ट ने हम लोगों को तीर की तरह फेंक दिया है। यदि एक बार भी लक्ष्य-भ्रष्ट हुए तो फिर हजार उपाय करने पर भी लक्ष्य की ओर नहीं लौट सकते। मैं जीवन के प्रारम्भकाल में लक्ष्य भ्रष्ट हुआ था, इस कारण जीवन का लक्ष्य अब ढूँढे भी मुझे नहीं मिलता। जिस समय जाग कर मैं अपनी रक्षा कर सकता था उस समय मैं अचेत पड़ा था। अब डूबने

का सहारा लेते हैं उसी तरह मैं बालक ध्रुव का सहारा लेना चाहता हूँ। ध्रुव की सहायता से ही मैं किनारे लगूँगा । मैं पहले ही से उसे मनुष्य बनाने की चेष्टा करूँगा और उसी के साथ अपना भी सुधार करके मनुष्य-जन्म को सार्थक करूँगा । परमहसजी, मैं अभी तक मनुष्य कहलाने योग्य भी नहीं हूँ, राजा होकर क्या करूँगा ।

राजा ने अन्तिम वाक्य बडे ही आवेग के साथ कहा जिसे सुन कर ध्रुव ने राजा के घुटने पर अपना माथा रगड कर कहा—मैं लाजा ।

बिल्वन ठाकुर ने हँस कर ध्रुव को अपनी गोद में बैठा लिया । बडी देर तक उसके मुँह की ओर देख कर राजा से कहा—वन में क्या कभी मनुष्य मनुष्यत्व को प्राप्त हो सकता है ? वन में केवल एक-मात्र पौदे ही, पाले जाने पर, तरक्की पा सकते हैं । मनुष्यों के ही समाज में रह कर मनुष्य सुधर सकता है ।

राजा ने कहा—मैं जगल में सिर्फ़ इसी लिए जाता हूँ कि जन-समाज से कुछ अलग रहूँ । जन-समाज से सर्वथा सम्बन्ध न त्यागूँगा । यह नियम भी थोडे ही दिनों के लिए समझो ।

इधर नक्षत्रराय सेनासहित राजधानी के समीप आ पहुँचे । प्रजा का अन्न धन लूटा जाने लगा । इस तरह सताये जाने पर प्रजा गोविन्दमाणिक्य को ही कोसने लगी । उन

लोगों ने कहा—"ये सब उपद्रव राजा के पाप से होते हैं।" राजा ने एक बार रघुपति को बुला कर भेंट करना चाहा। वह आ गया। राजा ने कहा—प्रजा को व्यर्थ क्यों सताते हो, मैं नक्षत्रराय के लिए राज्य छोड़ कर जाता हूँ। मुग़ल-सेना को विदा कर दो।

रघुपति ने कहा—जो आज्ञा, आप जिस वक्त राजधानी छोड़ कर विदा होंगे उसी वक्त मैं मुगल-सेना को विदा कर दूँगा। मैं त्रिपुरा को लूटना नहीं चाहता।

राजा ने उसी दिन राजधानी छोड़ कर अन्यत्र जाने का उद्योग किया, अपने राजकीय वेष को बदल डाला, गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया। नक्षत्रराय को एक बहुत बड़ा आशीर्वाद-पत्र लिखा। राजाओं के कर्तव्य की बहुत सी बातें लिखीं। फिर ध्रुव को गोद में बैठा कर पूछा—तुम मेरे साथ वन चलोगे ?

ध्रुव ने तुरत राजा के गले से लिपट कर कहा—हाँ, चलूँगा।

उसी वक्त राजा को एकाएक स्मरण हो आया कि ध्रुव को अपने साथ ले जाने के विषय में उसके चचा केदारेश्वर से पूछ लेना आवश्यक है। राजा ने केदारेश्वर को बुला कर कहा—तुम्हारी सम्मति हो तो मैं ध्रुव को अपने साथ ले जाऊँ।

ध्रुव दिन रात राजा के ही पास रहता था। अपने चचा के साथ उसका कुछ जियादा मेल-जोल न था। इस कारण राजा के मन में इस बात की सम्भावना न थी कि ध्रुव को

हमारे साथ जाने देने में केदारेश्वर कोई उज्र करेगा। राजा की बात सुन कर उसने कहा—महाराज, मैं इसके लिए सम्मति कैसे दूँ।

यह सुन कर राजा के होश उड़ गये मानों एकाएक उन पर वज्र गिरा। वे जरा ठहर कर बोले—केदारेश्वर तुम भी मेरे साथ चलो।

केदारेश्वर—नहीं महाराज, जङ्गल में जाकर रहना मुझे पसन्द नहीं।

राजा ने अधीर होकर कहा—मैं जङ्गल में नहीं रहूँगा। मैं धन लेकर नौकरों के साथ बस्ती में ही रहूँगा।

केदारेश्वर—मैं देश छोड़ कर अन्यत्र न जाऊँगा।

राजा ने उससे अब और कुछ कहना उचित न समझ जोर से साँस ली। उनकी सारी आशा मिट्टी में मिल गई। एक ही पल मे मानो उनके लिए सारी धरती उलट गई।

ध्रुव पास ही प्रसन्नतापूर्वक खेल रहा था। राजा बड़ी देर तक उसकी ओर देखते रहे। मानो उसे आँख भर कर देख ही नहीं पाया।

ध्रुव ने उनको अपनी ओर खींच कर कहा—"तुम भी मेरे साथ खेलो।" राजा का सम्पूर्ण हृदय पसीज कर, मानो आँसू होकर, आँखो मे भर आया। उन्होंने बड़े कष्ट से आँसू रोके। फिर वे टूटे दिल से बोले—"अच्छा, ध्रुव यहीं रहे, मैं अकेला जाऊँगा।" जीवन के अवशिष्ट भाग का एक बड़ा लम्बा

कण्टकाकीर्ण मार्ग मानों एक ही पल में बिजली की तरह उनकी आँखों में समा गया।

केदारेश्वर ने ध्रुव का खेल बिगाड कर और यह कह कर उसका हाथ पकड कर खींचा कि—चल, मेरे साथ चल।

ध्रुव ने रोते रोते कहा—"नहीं।" राजा ने चौंक कर उसकी ओर मुँह फिरा कर देखा। ध्रुव दौड कर आया। राजा से लिपट कर उसने जल्दी जल्दी उनके घुटनों के बीच अपना मुँह छिपा लिया। राजा ने ध्रुव को गोद में उठा लिया, उसे छाती से लगाया। उनका विशाल हृदय फटना चाहता था परन्तु छोटे से ध्रुव को छाती में दबा कर हृदय को ठंडा किया। वे उसी तरह ध्रुव को छाती से लगाये कमरे में इधर उधर घूमने लगे। ध्रुव उनके कन्धे पर माथा रख कर बडे शान्तभाव से पड रहा। यात्रा का समय आगया। ध्रुव राजा की गोद में सो रहा है। राजा ने निद्रित ध्रुव को धीरे धीरे अपनी गोद से केदारेश्वर के हाथ में देकर यात्रा की।

सैंतीसवाँ परिच्छेद

नक्षत्रराय ने सेना को साथ लेकर पूरब दरवाजे से किले के भीतर प्रवेश किया। इधर गोविन्दमाणिक्य कुछ धन और इने गिने नौकरों को साथ लेकर पश्चिम द्वार से किले के बाहर हो गये। शहर के लोग शङ्खध्वनि के साथ भाँति भाँति के

बजाते, जय जयकार करते हुए, नक्षत्रराय को कुछ आगे से लाकर हर्ष प्रकट करने लगे। गोविन्दमाणिक्य जिधर से घोडे पर चढे चले जा रहे थे उधर उनका सम्मान करना किसी ने आवश्यक न समझा, बरन् सडक के प्रान्तवर्ती घरो से स्त्रियाँ बाहर निकल निकल कर उन्हे गालियाँ देने लगीं। वे समझती थीं कि इन्हीं के पाप से उनके घर में अन्न नही, इन्हीं के पास से उनके बालबच्चे भूखो मर रहे हैं। जिन दीन बुढ़ियो को उस भयङ्कर दुर्भिक्ष के समय राजा के यहाँ से रोज रोज भोजन मिलता था और स्वय राजा जिन्हे धीरज दिया करते थे, वे अपने दुबले हाथ उठा उठा कर राजा को कोसने लगीं। माँ से सिखलाये जाने पर लडके ताली बजाते हुए राजा के पीछे पीछे चले। इन बातो पर ध्यान न देकर राजा बराबर आगे की ओर देखते हुए धीरे धीरे चलने लगे। एक किसान अपने खेत से आरहा था। उसने राजा को देख कर बडी भावभक्ति से प्रणाम किया। राजा का हृदय द्रवित हो गया। वे घोडे की बाग रोक कर ठहर गये और बोले—"भाई, मुझे अब यहाँ से आगे बढने दो।" राजा की इस अवस्था पर उसे बड़ा दु ख हुआ। उनकी सन्तानवत् प्रजा मे से एक इसी किसान ने चलते वक्त उन्हे भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया और बडी उदासी से उन्हे विदा किया। राजा के पीछे झुड के झुड लडके तालियाँ बजा कर हँसी उडा रहे थे। यह देख कर उस किसान ने, अत्यन्त क्रुद्ध होकर, उन लडको को भगा दिया। राजा ने उसे मना किया। आखिर

सड़क के जिस भाग में केदारेश्वर का घर था उसी ओर राजा आ गये। राजा ने घूम कर दक्खिन ओर देखा कि सवेरा हो गया है। जाड़े का समय है। चारों ओर कुहरा छाया हुआ है। सूर्य की किरणें कुहरे को फाड़ कर अब बाहर निकल पड़ी हैं। केदारेश्वर के घर की ओर देख कर राजा को पारसाल के आषाढ़ महीने का वह सवेरा याद आ गया। तब वर्षा का समय था, पानी बरसने का दिन था। द्वितीया के कृश चन्द्र के सदृश वह बालिका (हासी) बेहोश होकर बिछौने के एक प्रान्त में दबी सो रही है। बालक ध्रुव उसकी हालत को कुछ न समझ, उसके आँचल के छोर को मुँह में दबा कर, कभी उसके मुँह की ओर देखता है और कभी अपने छोटे मोटे गोल गोल हाथ से धीरे धीरे उसके मुँह को थपथपाता है। राजा को एक एक करके सभी पुरानी बातें याद आ गईं मानो आज का सबेरा आषाढ़ के उस मेघाच्छन्न प्रातःकाल में छिपा था। क्या राजा के मन में यह भावना हुई कि जो अदृष्ट आज हमें राजच्युत और अपमानित करके घर से निकाल कर बाहर लिये जा रहा है, वही अदृष्ट इस छोटे घर के द्वार पर उस आषाढ़ के सबेरे के पहर हमारी बाट देख रहा था। इसी जगह उस अदृष्ट के साथ इनकी पहली मुलाकात हुई थी। राजा अन्यमनस्क होकर इस घर के सामने कुछ देर ठहर गये। उस वक्त वहाँ उनके नौकरों के सिवा और कोई आदमी न था। जो लड़के पीछे पीछे आ रहे थे उन्हें उस किसान ने भगा दिया था। किन्तु

किसान को दूर गया देख कर वे लड़के फिर पहुँच गये। उनकी चिल्लाहट से राजा सावधान होकर और एक गहरी साँस लेकर धीरे धीरे चलने लगे। एकाएक उन लड़को के शोर गुल में एक सुमधुर परिचित स्वर उनके कानों मे आकर प्रविष्ट हुआ। उन्होंने देखा कि ध्रुव दोनो हाथो को ऊपर उठाये हँसते हँसते उनके पास दौड़ा आ रहा है। केदारेश्वर घर पर नहीं है। वह नये राजा के निकट अपनी भक्ति दिखलाने गया है। घर मे सिर्फ एक बूढी दासी थी। गोविन्दमाणिक्य झट घोडे से उतर पडे। ध्रुव ने उनके कपडे का दामन पकड कर उनके घुटनो के बीच मुँह छिपाया और अपने प्रथम आनन्द के उफान को शान्त करके राजा से कहा—"मैं घोले पर चढूँगा।" राजा ने उसको घोडे पर चढा दिया। घोडे पर चढ कर वह राजा के गले से लिपट गया। राजा के स्वभाव में एक विलक्षण उलट फेर देख कर ध्रुव मन ही मन कुछ सोचने लगा। गाढी नींद से जगाने के हेतु लोग जैसे भाँति भाँति के कौशल करते हैं वैसेही ध्रुव ने राजा को अपनी ओर खींच कर, उनसे लिपट कर और उनके गाल पर अपना गाल रख कर, उनके भाव को पहले के रूप में ले आना चाहा। अन्त में विफल-प्रयत्न होकर वह अपने मुँह में अँगुली डाल कर चुप हो रहा। राजा ने ध्रुव के हृदय का भाव समझ कर वार वार उसका मुँह चूमा। आखिर विवश होकर राजा ने कहा—"ध्रुव, मैं अब जाता हूँ।" उसनेराजा के मुँह की ओर देख कर कहा—मैं भी चलूँगा।

राजा—तुम कहाँ जाओगे । अपने चाचा के पास रहो ।

ध्रुव—नहीं, मैं तो तुम्हारे साथ चलूँगा ।

उसी वक्त वह बुढिया घर से निकल कर बड-बडाती हुई वहाँ आ पहुँची । वह जोर से ध्रुव का हाथ पकड़ कर और उसे खींच कर बोली—चल यहाँ से ।

ध्रुव डर गया । वह दोनो हाथो से राजा को पकड कर उनके बदन से लिपट गया । उसने अपना मुँह उनकी छाती के पास छिपा रक्खा । राजा अधीर होकर मन ही मन सोचने लगे—हृदय की प्राण-रक्षक नाडियाँ भले ही तोडी जा सकती हैं किन्तु इन दोनो हाथों का बन्धन कैसे तोडा जा सकता है । आज इसे भी तोडना पडा । राजा ने धीरे धीरे ध्रुव के दोनो हाथ छुडा कर बलपूर्वक उसे दासी के हवाले कर दिया । ध्रुव रोने लगा और हाथ उठा कर बार बार कहने लगा—"मैं जाऊँगा ।" राजा ने पीछे की ओर नहीं देखा । झट घोडे पर सवार होकर खूब जोर से घोडे को दौडा दिया । वे आगे बढते हैं परन्तु मानो ध्रुव के रोने का शब्द उन्हें सुन पडता है । ध्रुव अपने दोनों हाथों को उठा कर मानो उन्हे पुकार कर कह रहा है—"मैं चलूँगा ।" राजा की आँखों से आँसू गिरने लगे । उन्हें घाट घाट अब कुछ नहीं सूझता । मानो सूर्य का प्रकाश और सारा ससार उनके अश्रुजल में डूब गया । घोडा अपने मन से जाने लगा ।

रास्ते में कहीं मुगल-सेना का एक दल आ रहा था । वह राजा को लक्ष्य करके हँसने लगा, यहाँ तक कि अपने नौकरों

के साथ उनका उत्कट उपहास करने लगा। राजा के एक सभासद्, उसी रास्ते, घोड़े पर चढ़े कहीं जा रहे थे। वे इस दृश्य को देख कर राजा के पास दौड़े आये। उन्होंने कहा—महाराज, यह अपमान तो मुझसे सहा नहीं जाता। महाराज की दीन दशा देख कर ये लोग ढिठाई करने लग गये हैं। अच्छा, आप मेरी यह तलवार और यह पगड़ी लें। आप कुछ देर यहाँ ठहरने की कृपा करें, मैं अपने लोगों को अभी लाकर इन नराधमों को शिक्षा देता हूँ।

राजा ने कहा—नहीं नयनराय, मुझे तलवार और पगड़ी की कुछ जरूरत नहीं। ये लोग मेरा क्या करेंगे। मैं अब इससे भी अधिक अपमान सहने को तैयार हूँ। मैं हाथ में नङ्गी तलवार लेकर अब इन संसारी मनुष्यों से आदर पाना नहीं चाहता। संसार के सर्वसाधारण लोग जैसे भले बुरे वक्त में मान-अपमान और सुख दुःख सहा करते हैं, वैसे ही मैं भी, जगदीश्वर के भरोसे, सहूँगा। देखो नयनराय, भाई-बन्धु मेरे साथ शत्रुता कर रहे हैं, आश्रितगण कृतघ्नता कर रहे हैं और जो अभी तक लोग सिर नवाते थे वे अब पलक उठा कर मेरी ओर देखते तक नहीं। किसी समय ये बातें मेरे लिए असह्य होतीं किन्तु इस समय इनके सहन करने ही में मुझे सुख मिलता है। जो लोग मेरे हितैषी हैं उन्हें भी मैं जानता हूँ। जाओ नयनराय, तुम लौट जाओ। नक्षत्रराय को सम्मानपूर्वक आगे से ले आओ। जिस तरह तुम मेरा सम्मान करते थे उसी तरह नक्षत्र का

भी सम्मान करना । तुम लोग मिल कर नक्षत्र को अच्छे रास्ते से चलाना और उन्हें प्रजा की भलाई का ध्यान दिला कर प्रजा की-रक्षा करने में सहायता देना । तुम लोगों से बिदा होते समय यही मेरी अन्तिम प्रार्थना है । तुम लोग भ्रम से भी कभी मेरी बातें छेड़ कर अथवा मेरे साथ उनकी बराबरी करके उनकी शिकायत न करना । अच्छा तो मैं अब चलता हूँ—यह कह कर राजा उस सभासद् के साथ अङ्कमालिका का व्यवहार करके अग्रसर हुए । सभासद् भी उन्हें प्रणाम करके आँसू पोंछता चला गया ।

जब राजा गोमती नदी के ऊँचे कछार के निकट जा पहुँचे तब बिल्वन ठाकुर जंगल से निकले । उनके सामने आकर और उँगली उठा कर उन्होंने कहा—"जय हो ।" राजा ने घोड़े से उतर कर उन्हें प्रणाम किया । बिल्वन ठाकुर ने कहा—मैं आपसे बिदा माँगने आया हूँ ।

राजा ने कहा—क्यों आप नक्षत्र के पास रह कर उन्हें अच्छी अच्छी सलाह दें और राज्य का हित साधन करें ।

बिल्वन ने कहा—नहीं, जहाँ आप राजा नहीं वहाँ मैं कुछ करने योग्य नहीं । यहाँ रह कर मैं अब कोई काम न कर सकूँगा ।

राजा ने कहा—तो अन्यत्र कहाँ जाइएगा । मेरे ही ऊपर दया कीजिए । आपको देखते ही मेरे दुर्बल हृदय में बल आजाता है ।

बिल्वन—मैं यही ढूँढने चला हूँ कि मेरा प्रयोजन कहाँ है। मैं आपके पास रहूँ चाहे दूर रहूँ, आपके ऊपर मेरा प्रेम ज्यों का त्यों रहेगा। आप इसे सत्य समझें। आपके साथ वन में जाकर मैं किसी का क्या उपकार करूँगा ?

राजा ने कोमल स्वर में—"तो मुझे आगे बढने की आज्ञा दीजिए।" कह कर फिर उन्हें प्रणाम किया। दोनों ने अपनी अपनी राह ली।

अड़तीसवाँ परिच्छेद

नक्षत्रराय अपना नाम छत्रमाणिक्य रख कर बड़े समारोह के साथ राजसिंहासन पर बैठ गये। खजाने में रुपये अधिक नहीं थे, इस कारण जहाँ तक मिल सका प्रजा का सर्वस्व हरण करके मुगल-सैनिकों को प्रतिज्ञात धन देकर विदा किया। छत्रमाणिक्य दुस्सह दारुण दुर्भिक्ष और दरिद्रता लेकर राज्यशासन करने लगे। चारों ओर प्रजा के रोने, कलपने और कोसने की बातें सुनाई देने लगीं।

जिस आसन पर गोविन्दमाणिक्य बैठते थे, जिस पलँग पर वे सोते थे, जो लोग उनके प्रिय पात्र थे, वे सब चुपचाप मानों छत्रमाणिक्य का अपमान करने लगे। गोविन्दमाणिक्य की सभी चीजें उनकी आँखों में खटकने लगीं। उन्होंने धीरे धीरे अपनी आँखों के सामने से उन चीजों को हटाना शुरू

किया। गोविन्दमाणिक्य के व्यवहार की जितनी वस्तुएँ थीं, सबको उन्होंने नष्ट कर डाला। गोविन्दमाणिक्य के जो प्रिय नौकर थे, उनको छत्रमाणिक्य ने निकाल बाहर किया। गोविन्दमाणिक्य के नाम का गन्ध तक भी अब वे सहन नहीं कर सकते। गोविन्दमाणिक्य का जिक्र होते ही उनके कान खडे हो जाते थे। वे समझते थे कि हमीं को लक्ष्य करके सभासद्गण गोविन्दमाणिक्य की चर्चा कर रहे हैं। वे मन ही मन हमेशा सोचा करते थे कि लोग हमें राजा मानकर पूर्णरूप से सम्मान नहीं करते। इस कारण वे जब तब लोगों से बेसबब बिगड बैठते थे। उनके इस अकारण क्रोध से डर कर सभासद् कुछ कहने का साहस न करते थे। सभी को भयभीत होकर रहना पडता था। छत्रमाणिक्य राज काज कुछ न समझते थे। जब कोई उन्हें अच्छी सलाह देने आता था तब वे झट बोल उठते थे—"क्या मैं इतना भी नहीं समझता? क्या तुमने मुझे बिलकुल बेवक़ूफ ही समझ रक्खा है?" सलाह देनेवाला अपना सा मुँह ले कर चला जाता था। छत्रमाणिक्य मन ही मन समझते थे कि सब लोग मुझे राजगद्दी के अयोग्य और राज्यापहारी समझ कर मेरी उपेक्षा कर रहे हैं। इससे चिढ कर वे बल-पूर्वक बहुत बडे राजा हो उठे। वे यथेच्छ काम करके सब जगह अपने एकाधिपत्य की घोषणा करने लगे। उनके जी में जब जो आता था करते थे, जिसको रखना चाहते थे, रखते थे, जिसे मारना चाहते थे, मारते थे। अपनी

सत्ता को विशेष रूप से प्रमाणित करने के लिए जिसको रखना उचित नहीं उसे रख लेते थे, और जिसको मारना उचित नहीं उसे मारते थे। किस अपराध मे क्या दण्ड देना चाहिए इसका ज्ञान उन्हें न था, इस कारण छोटे छोटे अपराधों के लिए वे भारी दण्ड दे बैठते थे और जिसे भारी दण्ड देना चाहिए उसे बेकसूर साबित करके छोड देते थे। उनके इस अनुचित विचार से सभी लोग दु खी थे। दुर्भिक्ष के कारण प्रजा भूखो मर रही है किन्तु छत्रमाणिक्य के नित्य नये नये उत्सव होते हैं, कभी उसकी समाप्ति ही नहीं। प्रतिदिन नाच, गान और भोज का आडम्बर रहता है। राज्य का काम बिलकुल नौकरो के ही भरोसे छोड कर आप दिन रात जलसे-पार्टी की तैयारी में ही लगे रहते थे। इसके पहले आज तक किसी राजा ने, सिंहासन पर बैठ कर, इस प्रकार राजत्व की बिलकुल पूँछ पसार कर मयूर की तरह अपूर्व नृत्य नहीं किया था।

प्रजा चारो ओर से अप्रसन्नता प्रकट करने लगी। छत्र-माणिक्य उससे और भी अधिक जल उठे। उन्होंने समझा कि यह केवल राजा के प्रति अभक्ति दिखलाना है। उन्होंने अप्रसन्नता का दुगुना सवब खडा करके प्रजा को अनेक प्रकार के कष्ट दे देकर और डर दिखला दिखला कर जबरदस्ती उनके मुँह बन्द कर दिये। सारा राज्य घोर निस्तब्ध रात की तरह शब्द-रहित हो गया। शान्त स्वभाववाले नक्षत्रराय छत्र-

भाग्यिक्य होकर सहसा इस प्रकार का व्यवहार करें तो इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं। ऐसे दुर्बल-हृदय के मनुष्य प्रभुता पाकर इसी प्रकार उद्धत और यथेच्छाचारी हो उठते हैं। अनेक बार ऐसे दुर्बल-हृदय राजाओं के दुराचार से प्रजा कष्ट पाती है।

रघुपति का उद्देश सफल हो गया। उसके हृदय मे बदला लेने की जो बुरी वासना रहती थी वह अब नहीं है। जिस काम में उसने हाथ डाला था उसे पूरा करके छोडा, अतएव प्रतिहिंसा का भाव धीरे धीरे उसके मन से दूर हो गया। वह अनेक कपट-कौशल से सभी विघ्न-बाधाओं को झेलता हुआ एक ही साधन में प्रवृत्त होकर मन ही मन लड्डू खा रहा था। आखिर उसका वही उद्देश सिद्ध हो गया। बस, इससे बढ कर ससार में उसके लिए अब और दूसरा कोई सुख नहीं है।

रघुपति ने अपने मन्दिर में जाकर देखा कि वहाँ कोई नहीं है। वह यद्यपि भली भाँति जानता था कि जयसिंह नहीं है तथापि उसने अभी नया करके जाना कि जयसिंह नहीं है। मानो दो-एक बार उसको ऐसा लगा कि "है।" इसके बाद फिर स्मरण हो आया कि "नहीं है।" हवा लगने से एकाएक किवाड खुल गये। उसने चौंक कर पीछे की ओर घूम कर देखा—जयसिंह तो नहीं आया। उसने सोचा कि जिस घर में जयसिंह रहता था शायद वह उसी घर

हो। वह बडी देर तक यही सोचता रहा। डर के मारे उस घर में न जा सका। आखिर उसने डरते डरते उस घर के पीछे की ओर जाकर देखा, जयसिंह वहाँ नहीं है। साँझ होते देख रघुपति साहस करके धीरे धीरे जयसिंह के घर में गया। समाधि घर की तरह वह घर सूना पडा है। वहाँ एक तरफ एक काठ का सन्दूक है। उस सन्दूक के नीचे जयसिंह की खडाऊँ पडी हैं उन पर धूल जम गई है। दीवार में जयसिंह के हाथ की लिखी काली की मूर्त्ति है। घर के पूरब कोन में एक धातु-निर्मित चिरागदान पर धातु का ही दिया रक्खा है। बरसो से वह योंही पड़ा है। किसी ने उसे जलाया तक नहीं। मकडी के जाले में वह छिप गया है। चिरागदान के पास दीवार मे काला दाग़ लगा है। घर में इन चीजों के सिवा और कुछ नहीं है। रघुपति ने खूब जोर से साँस ली। वह साँस घर भर मे प्रतिध्वनित हो उठी। अँधेरा हो जाने से अब कुछ दिखाई नहीं देता। एक छिपकली ठहर ठहर कर टिक् टिक् शब्द करने लगी। खुले हुए दरवाजे से घर के भीतर ठण्डी ठण्डी हवा आने लगी। रघुपति सन्दूक के ऊपर बैठ कर काँपने लगा।

रघुपति ने इस शून्य मन्दिर में इसी तरह एक महीना बिताया। किन्तु इस प्रकार वह और अधिक दिन नहीं बिता सका। उसने पुरोहिती छोड ही दी है। एक दिन उसने राज-सभा मे जाकर राज्यशासन के कामो में दस्तन्दाजी की। देखा

कि अविचार, अत्याचार और अशान्ति ये तीनो छत्रमाणिक्य नाम धारण करके राज्य कर रहे हैं। वह राज्य में शान्ति स्थापन करने का प्रयत्न करने लगा। छत्रमाणिक्य को सलाह देने गया। छत्रमाणिक्य बोल उठे—"रघुपति, तुम राजकाज का हाल क्या जानो, इन बातो को तुम क्या समझोगे"? राजा की प्रचण्डता देख कर रघुपति अवाक् हो गया। उसने देखा कि अब वे नक्षत्रराय नहीं हैं। रघुपति के ऊपर राजा की अप्रसन्नता क्रमश बढने लगी। छत्रमाणिक्य यह समझ कर, कि रघुपति अपने मन में यही सोचता होगा कि उसी ने मुझे राजा बनाया है, बहुत चिढे। रघुपति को देखते ही वे भौंहे सिकोडते थे। आखिर एक दिन उन्होने साफ साफ कह दिया—"पुरोहितजी, तुम अपने मन्दिर का काम जाकर देखो, राजसभा मे तुम्हारा कोई काम नहीं।" रघुपति ने अङ्गार की सी तीव्र दृष्टि से छत्रमाणिक्य की ओर देखा। छत्रमाणिक्य मुँह फेर कर वहाँ से चले गये।

उनतालीसवाँ परिच्छेद

नक्षत्रराय ने जिस दिन राजधानी मे प्रवेश किया उसी दिन केदारेश्वर उनके पास हाजिरी देने गया। परन्तु वह बहुत उद्योग करने पर भी उनके सामने नहीं जा सका। पहरेदारो के धक्के खाते खाते उसका नाक मे दम आ गया। आखिर

वह जान लेकर वहाँ से भागा। गोविन्दमाणिक्य के राजत्व-काल में वह यथेष्ट षट्रस भोजन से परितृप्त होकर राज-भवन में आनन्द-पूर्वक रहा करता था। उन दिनों युवराज नक्षत्रराय के साथ उसका बड़ा मेल जोल था। इधर कुछ दिनों से राज-भवन का सम्बन्ध छूट जाने से उसे अब अपना जीवन-निर्वाह करना कठिन हो गया है। जब वह गोविन्दमाणिक्य के पाणि-पल्लव की छाया में था तब सब लोग उससे डरते और उसकी इज्जत करते थे लेकिन अब उसे कोई नहीं पूछता। पहले जब किसी को राजा से कुछ काम आ पड़ता था तब लोग केदारेश्वर के पास आकर उसकी खुशामद करते थे। अब उससे कोई बात तक नहीं करता, उसकी ओर कोई नजर उठा कर देखता तक नहीं। इस अपमान के साथ ही साथ भोजन का भी कष्ट होने लगा। वह चाहता है, किसी तरह फिर राज-भवन में मेरी पैठ हो जाय, राज-भवन के सम्बन्ध से फिर मुझे पूर्ववत् आराम मिलेगा।

एक दिन वह यथावसर कुछ भेंट लेकर आम दरबार में छत्रमाणिक्य से मिलने गया। वह अपनी बेहद खुशी जाहिर कर हँसता हुआ बड़ी उमङ्ग के साथ राजा के सामने आकर खड़ा हुआ। उसको देखते ही राजा जल उठे। उन्होंने कहा—यह हँसी कैसी? तुम मेरे साथ दिल्लगी करने आये हो?

सभा में जितने लोग बैठे थे सभी ने उसे ललकारा।

केदारेश्वर की विकसित दन्तपंक्ति पर उसी घड़ी यवनिकापात हुआ। उसने अपना मुँह बन्द कर लिया।

छत्रमाणिक्य ने कहा—तुमको जो कुछ कहना है सो शीघ्र कह कर चले जाओ।

केदारेश्वर को जो कहना था सो बिलकुल भूल गया। उसने कई दिनों से जो कुछ कहने को सोच रक्खा था वह उसके पेट में ही रह गया। जब राजा ने फिर कहा—"अगर तुझे कुछ कहना नहीं है तो यहाँ से जा।" तब उसने झटपट कुछ कहना आवश्यक समझा। वह आँखों में, मुँह मे, और कण्ठस्वर मे सहसा पूर्ण रूप से करुणरस भर कर बोला—महाराज, क्या आप ध्रुव को भूल गये?

यह सुनते ही छत्रमाणिक्य मारे क्रोध के आग-बबूला हो उठे। मूर्ख केदारेश्वर ने उनका भाव न समझ कर फिर कहा—वह काका, काका, कह कर महाराज के लिए अब भी रोया करता है।

छत्रमाणिक्य ने कहा—तुम्हारी शेखी तो कुछ कही नहीं जाती। तुम्हारा भतीजा मुझे काका कहता है। तुमने उसे यही शिक्षा दी है?

केदारेश्वर भयभीत हो हाथ जोड़ कर बोला—महाराज—

छत्रमाणिक्य ने कहा—कोई है? इसको और उस लड़के को अभी मेरे राज्य से निकाल कर बाहर कर दे।

एकाएक केदारेश्वर के गले पर पहरेदारों के इतने हाथ आ

पड़े कि वह तीर की तरह एक-दम बाहर जा गिरा। पहरेदारों ने उसके हाथ से उपहार का डाला लेकर आपस में बाँट लिया। केदारेश्वर ध्रुव को लेकर उसी घड़ी त्रिपुरा से विदा हुए।

चालीसवाँ परिच्छेद

रघुपति फिर मन्दिर में लौट आया। उसने आकर देखा कि अब कोई प्रेमपरिपूर्ण हृदय से कपड़े इत्यादि लेकर मेरी अपेक्षा नहीं करता। पत्थर का मन्दिर मौजूद है। उसके अन्दर कहीं चैतन्य का गन्धमात्र नहीं। वह गोमती नदी के किनारे सफ़ेद पत्थर की सीढ़ी पर जा बैठा। सीढ़ी के वाम भाग में जयसिंह के हाथ के रोपे हरसिंगार के पेड़ में असंख्य फूल फूले हैं। इन फूलों को देख कर उसे जयसिंह का सुन्दर मुँह, स्वच्छ हृदय, और कौटिल्यरहित जीवन याद आने लगा। सिंह के सदृश प्रबल पराक्रमी तथा हिरन के बच्चे के सदृश भीरु जयसिंह का ध्यान रघुपति के हृदय में हो आया। जयसिंह ने रघुपति के सारे हृदय पर अधिकार जमा लिया। इसके पहले वह जयसिंह की अपेक्षा अपने को विशेष ज्ञानी समझता था। अब वह अपनी अपेक्षा जयसिंह को ही बहुत विज्ञ मानने लगा। उसके ऊपर जो जयसिंह की निश्छल भक्ति थी, उस भक्ति का स्मरण करके जयसिंह पर उसे अत्यधिक श्रद्धा हुई, और अपने ऊपर अश्रद्धा उत्पन्न हुई। जयसिंह के साथ उसने

जो अनेक अशिष्ट व्यवहार किये थे उन्हे याद करके उसका कलेजा फटने लगा। उसने मन ही मन कहा—हाय! किस योग्यता के विरते मैंने जयसिंह का अपमान किया! मैं इस योग्य कदापि नहीं कि जयसिंह का अपमान करूँ।

यदि जयसिंह क्षणमात्र के लिए एक बार दिखाई देते तो मैं अपना दोष स्वीकार करके उनसे क्षमा माँगता। जयसिंह की सभी बाते उसे याद आने लगीं। उसके हृदय मे जयसिंह का सारा जीवन विराजने लगा। वह जयसिंह के उदार चरित्र की भावना करता हुआ विदेह भाव धारण कर सारे झगडे टटे भूल गया। ससार का एक बडा बोझ जो उसके माथे चढा था और जो उसे दिन रात दबा रहा था वह मानो उसके माथे से अब अलग जा गिरा। जिस नक्षत्रराय को उसने राजा बना दिया है और जो नक्षत्रराय राजा होकर आज उसी का अपमान कर रहा है—इसे याद करके उसके मन मे अब जरा भी क्रोध उत्पन्न नहीं होता। अब वह मान-अपमान को बराबर समझता है। मान-अपमान की बातो पर उसे हँसी आती है। अब वह कोई ऐसा काम करना चाहता है जिससे जयसिंह का आत्मा भली भाँति सन्तुष्ट हो। चारो ओर दृष्टि दौडाई, कोई काम सूझ न पडा। चारो ओर शून्य ही शून्य दिखाई दे रहा है। इस शून्य-मन्दिर ने तो मानो उसे दबा डाला। मानों उस मन्दिर ने उसकी साँस बन्द कर दी। वह कोई बडा काम करके अपने हृदय की यातना मिटाना चाहता है किन्तु इस॰

शून्य-मन्दिर की ओर देख कर पिँजरे मे बन्द चिडिया की तरह उसका हृदय अधीर हो उठा ।

वहाँ से उठ कर वह मन्दिर के समीपवर्ती उपवन में व्यग्र-चित्त होकर घूमने लगा । मन्दिर के भीतर निश्चेष्ट निर्जीव मूर्त्तियो पर उसको बडी ही घृणा उत्पन्न हुई । उसे अब इन पत्थर की मूर्त्तियो की सेवा में समय बिताना व्यर्थ जान पडा । जब रात दोपहर के लगभग बीती तब रघुपति ने चकमक पत्थर से आग बना कर एक चिराग़ जलाया । चिराग को हाथ में लेकर वह मन्दिर मे गया । भीतर जाकर उसने देखा कि चौदहों देवता समान भाव से खडे हैं । पारसाल आषाढ़ की कालरात्रि में, दिये की धुँधली रोशनी में, भक्त के मृतकलेवर के सम्मुख, रक्त-स्रोत के बीच वे ज्ञानहीन अचेतन की तरह जिस प्रकार खडे थे उसी प्रकार आज भी खडे हैं । रघुपति जोर से बोल उठा—झूठ, सब झूठ ! हा प्यारे जयसिंह ! तुमने अपने अमूल्य हृदय का रक्त किसे अर्पित किया । यहाँ कोई देवता नहीं, कोई देवता नहीं । इस पिशाच रघुपति ने ही उस लोहू को पी लिया । यह कह कर उस ने काली की मूर्त्ति को आसन पर से खींच कर उठा लिया, और मन्दिर के द्वार पर खडे होकर ज़ोर से उसे दूर फेंक दिया। अँधेरे में वह पत्थर की मूर्ति, पत्थर की सीढियो पर से, शब्दपूर्वक लुढकती पुढकती गोमती के जल में जा गिरी । जो अविद्या राक्षसी पत्थर का स्वरूप धारण किये इतने दिनो से रक्तपान करती आती थी वह आज गोमती के

गर्भस्थ हजारो पत्थर के टुकडो में जा मिली। किन्तु उसने मनुष्यो के कठिन हृदयरूपी आसन का परित्याग न किया। रघुपति चिराग बुझा कर मन्दिर के बाहर निकल कर रास्ते पर आया। वह उसी रात को राजधानी छोड कर चल दिया।

इकतालीसवाँ परिच्छेद

बिल्वन ठाकुर कुछ दिनो से नवाखाली जिले के अन्तर्गत निजामपुर मे ठहरे हैं। वहाँ भयङ्कर रूप से हैजा फैला हुआ है। फागुन के अन्त में एक दिन बादल घिर आया। दिन भर आसमान पर मेघ छाये रहे। बीच बीच मे थोडा थोडा पानी भी बरस जाता था। आखिर शाम को पानी बरसने लगा। पहले पूरवा हवा बह रही थी, फिर रात के दूसरे पहर उत्तर और ईशान कोण की हवा बडे वेग से बहने लगी। साथ ही साथ पानी बरसने लगा। बडी देर तक खूब जोर शोर से पानी बरस जाने पर झडी कुछ कम हुई। उसी वक्त हल्ला मचा कि बाढ आ रही है। कोई घर के छप्पर पर जा चढा, कोई ऊँचे टीले पर जा खडा हुआ, कोई पेड पर, और कोई मन्दिर के शिखर पर जा बैठा। रात बिलकुल अँधेरी है। कुछ कुछ पानी भी बरस रहा है। बाढ आने का शब्द भी क्रमश लोगों को सुनाई देने लगा। उसे सुन कर गाँव के सभी लोग हतबुद्धि हो गये। देखते ही देखते बाढ आ गई। एक बार

उसकी तरङ्ग आई, उसके ऊपर तुरन्त ही दूसरी तरङ्ग आई। दूसरी बार की तरङ्ग आते ही गाँव में आठ हाथ खडा पानी चढ आया। जब सवेरा हुआ, और पानी का वेग कुछ कम हुआ तब सारा गाँव पानी मे डूबा हुआ दिखाई देने लगा। गाँव मे ऐसे घर बहुत ही थोडे बच गये थे जो पानी में बिलकुल नहीं डूबे। लोगो का पता नहीं। अन्यान्य गाँवों से, आदमियो और चौपायो की कितनी ही लाशे बह बह कर आई हैं। आम और कटहल के वडे बडे पेंड जड़ से उखड कर अलग पडे हैं। कितने ही पेड पानी मे बह गये हैं। दीवारे गिर जाने से दूसरे गाँव के घरो के छप्पर बह आये हैं, वे जहाँ तहाँ उलटे पलटे पड़े हैं। कितने ही मिट्टी के बर्तन पानी के ऊपर इधर उधर तैर रहे हैं। गाँव मे बहुत से छोटे छोटे घर ऐसे थे जो बाँस, आम, कटहल और फरहद आदि बडे बडे पेडों से घिरे थे। इस कारण कितने ही लोग एक-दम न बह कर उन पेडों मे उलझ रहे। कितने ही लोग सारी रात उस बाढ की तरगो में झूमते हुए बाँस को पकडे उसके साथ बराबर झूमते रहे। किसी का शरीर फरहद के काँटो से छिन्न भिन्न हो गया है। कितने ही मनुष्य पेड उखड जाने पर उसके साथ ही बह गये हैं। पानी हट जाने पर जो लोग जीते बच गये थे वे नीचे आकर लाशो में अपने लोगो की खोज करने लगे। बहुत लाशें अपरिचित थीं जो अन्यान्य गाँवो से बह कर आई थीं। उन लाशों का किसी ने अग्नि-सस्कार नहीं किया। झुड के झुड गिद्ध उतर आये और नोच

नोच कर उन मुर्दों को खाने लगे। गीदड़ों और कुत्तों के साथ उनका कोई झगड़ा न रहा, क्योंकि वे दोनो भी मर चुके हैं। उस गाँव में बारह घर पठानों के थे। वे लोग बहुत ऊँची जमीन पर रहते थे। इस कारण बाढ से उन लोगों की प्राय कोई हानि नहीं हुई। जीवित व्यक्तियो में जिनको रहने के लिए घर मिल गया वे रह गये, जिन्हे घर न मिला वे जगह की खोज में अन्यत्र चले गये। उस समय जो लोग विदेश में थे उन्होंने देश लौट आने पर नये घर बनवाये। सारांश यह कि फिर धीरे धीरे लोगो की बस्ती बसने लगी। बस्ती अभी अच्छी तरह बसी भी न थी कि इतने ही मे मुर्दों के सडने से, तालाबों का पानी बिगड जाने से, हवा गन्दी हो जाने से तथा और भी अनेक कारणों से गाँव मे हैजा फैल गया। हैजे ने पहले पठानों ही के महल्ले में प्रवेश किया, और एक साथ सबको धर दबाया। मुर्दों को दफन करने का या परस्पर एक दूसरे की सेवा करने का किसी को अवसर न मिला। हिन्दुओ ने कहा—मुसलमान लोग गोहत्या के पापो का फल भोग रहे हैं। जातीय शत्रुता के कारण तथा जातिबाह्य होने के भय से कोई हिन्दू उन लोगो को चुल्लू भर पानी तक न पिला सका और न दूसरी ही तरह की कोई सहायता दे सका। बिल्वन ठाकुर जब इस गाँव में आये तब गाँव की यही हालत था। बिल्वन के साथ कुछ चेले भी थे। गाँव की दशा देख उन लोगो ने हैजे के डर से भागने की चेष्टा की तब बिल्वन ने धमका कर उनको

रोक लिया। बीमार पठानो की वे खुद अपने हाथो सेवा करने लगे। उन लोगों को पथ्य, पानी और दवा-दारू देने लगे। उन्होने मुर्दों को गाडने का भी प्रबन्ध कर दिया। हिन्दू सन्यासी का यह अनाचार देख कर हिन्दू लोग अचम्भे मे आ गये। बिल्वन से इस सम्बन्ध मे जो कोई पूछता तो उसे वे यही जवाब देते कि मैं सन्यासी हूँ, मेरी कोई जाति नहीं। मैं तो मनुष्य-जाति का हूँ। मनुष्य जब मरा जा रहा है तब जाति का विचार कैसा? अथवा ईश्वर की सृष्टि मे मनुष्य जब मनुष्य का प्रेम चाह रहा है तब फिर जाति-पाँति का विचार कैसा? हिन्दू लोग बिल्वन की यह निरपेक्ष परोपकारिता देख कर उन पर अश्रद्धा या इनकी निन्दा करने का साहस नहीं कर सके। बिल्वन का यह काम भला है या बुरा, इसका भी निश्चय वे नहीं कर सके।

शास्त्रीय ज्ञान न रहने के कारण उन हिन्दुओं ने कुछ सदेह करते हुए कहा—"यह काम अच्छा नहीं।" किन्तु उनके हृदय में जो पुरुष विराज रहा था उसने कहा—"अच्छा है।" बिल्वन ठाकुर किसी के भला बुरा कहने की कुछ परवा न करके अपना काम करने लगे। मरणासन्न पठान उन्हें पैगम्बर समझने लगे। पठानों के छोटे छोटे लडकों को हैजा होने की जगह से अलग रखने के लिए बिल्वन उन्हें हिन्दुओं के पास ले गये। इस पर हिन्दू बेतरह बिगडे। किसी ने उन लडकों को आश्रय न दिया। तब बिल्वन उनको एक टूटे फूटे परित्यक्त

मन्दिर में ले गये । पठान के लडके उसी मन्दिर मे रहने लगे बिल्वन सवेरे ही उठ कर उन लडको के लिए भिक्षा माँगने बाहर जाते थे । परन्तु भिक्षा देता कौन ? देश में अन्न था कहाँ ? कितने ही लोग आहार न मिलने के कारण भूखों मर रहे हैं। उस गाँव का जो मुसलमान ज़मींदार था उसका घर वहाँ से बहुत दूर था । बिल्वन उसके पास गये। किसी तरह उन्हें प्रसन्न करके और उससे कुछ रुपया लेकर चावल मँगाने लगे । वे आप रोगियों की सेवा करते थे और उनके चेले चावल बाँटते थे। अवकाश मिलने पर बिल्वन कभी कभी उन लडकों के साथ मिल कर खेलते थे। वे लडके उन्हें देखते ही कोलाहल करने लगते थे । शाम के वक्त उस मन्दिर के पास होकर जाने से ऐसा मालूम होता था मानों मन्दिर मे हजारों तोते एक साथ टे टे कर रहे हैं। बिल्वन के पास इसराज के आकार का एक बाजा था । वे जब बहुत थक जाते थे तब उसी को बजा कर कुछ गाते थे । जब लडके उनको कुछ गाते बजाते देखते थे तब वे चारो ओर से उन्हे घेर कर बैठ जाते थे । कोई ध्यान-पूर्वक उनका गाना सुनता था, कोई बाजे का तार खींचता था, और कोई गाने की कोशिश करके बेतरह तान उठाता था ।

आखिर मुसलमानो के महल्ले से हैजा हिन्दुओं के महल्ले मे आया । गाँव मे एक तरह से अराजकता मच गई। चोरी डकैती का अन्त न रहा । जो जिसे पाता था लूट लेता था । मुसलमान

लोग दल बाँध बाँध कर डकैती करने लगे। वे लोग हिन्दू रोगियों को बिछौने से अलग पटक कर तख्त, चारपाई और चटाई तक ले जाने लगे। बिल्वन जी जान छोम कर उनको रोकने लगे। वे लोग बिल्वन की बात को हृदय से मानते थे, कभी उनकी बात टालने का साहस न करते थे। बिल्वन इसी प्रकार गाँव की शान्ति-रक्षा में लगे थे।

एक दिन सबेरे ही सबेरे एक चेले ने आकर बिल्वन से कहा—"एक परदेशी पीपल के नीचे पडा है। उसे हैजा हो गया है। लक्षण से जान पडता है कि अब वह न बचेगा। उसके साथ एक छोटा सा लड़का भी है।" बिल्वन ने उसी वक्त जाकर देखा, केदारेश्वर बे-सुध पडा है। ध्रुव उसके पास ही धूल मे सो रहा है। केदारेश्वर के प्राण कण्ठगत हो रहे हैं। रास्ता चलने के कष्ट और अनाहार से वह अत्यन्त खिन्न होगया था। इसी से उस बस्ती मे आते ही एकाएक उसको हैजे ने धर दबाया। बिल्वन ठाकुर ने बहुत कुछ उपचार किया पर किसी दवा से कुछ फायदा न हुआ। कुछ देर के बाद उसी पेड के नीचे उसकी मृत्यु हुई। ध्रुव की दशा देख कर बिल्वन को बडा दु ख हुआ। उसकी चेष्टा से उन्हें जान पडा मानों बडी देर से कुछ न खाने के कारण वह भूख से रोकर सो गया है। बिल्वन बड़ी सावधानी से उसे गोद में उठा कर अपने उसी बालकाश्रय मन्दिर में ले गये।

बयालीसवाँ परिच्छेद

चटगाँव इस समय अराकान के अधीन है। गोविन्दमाणिक्य राज्यच्युत होकर चटगाँव में आये हैं। यह सुन कर अराकान के राजा ने बड़े विनीत-भाव से उनके पास दूत भेज कर कहला भेजा— "अगर वे अपने सिंहासन पर फिर अधिकार करना चाहे तो मैं अपनी सेना के साथ उनकी सहायता करने को तैयार हूँ।" गोविन्द-माणिक्य ने उस दूत से कहा—मैं सिंहासन नहीं चाहता।

दूत—महाराज, कुछ दिन अराकान की राजधानी मे चल कर निवास करें।

राजा—मैं राजधानी मे भी रहना नहीं चाहता। चटगाँव के किसी प्रान्त में कोई स्थान मिल जाने ही मे मैं अराकान के राजा का ऋणी रहूँगा।

दूत—महाराज जहाँ रहना पसन्द करें वहीं रह सकते हैं। इस राज्य को आप अपना ही समझें।

अराकान-राज्य के कितने ही नौकर राजा के साथ ही साथ रहे। गोविन्दमाणिक्य ने उनको साथ रहने में मना नहीं किया। उन्होंने मन ही मन कहा—अराकान ही तो है, शायद मेरे ऊपर कुछ सन्देह करके अराकान के राजा मेरे पास अपने लोगों को रखना चाहते हों।

मयानी नदी के किनारे राजा ने अपनी कुटी बनवाई। नदी का जल बड़ा ही स्वच्छ है। धार उतनी विस्तृत नहीं है, किन्तु पत्थर के छोटे बड़े टुकड़ों पर से कल कल शब्द करती हुई बड़े

वेग से बह रही है । उस नदी के दोनो तरफ काले रङ्ग के पहाड खडे हैं । काले काले पत्थरों पर विचित्र रङ्ग की सेवार है जो नीचे की ओर लटक रही है । पहाड में कहीं कही छोटी छोटी गुफाये हैं जिनमें भाँति भाँति के पत्ती रहते हैं। पहाड का शिखर कहीं कहीं इतना ऊँचा है कि उसकी ओट में सूर्य की किरणें बड़ी देर में नदी पर आकर पड़ती हैं। पहाड के ऊपर अनेक प्रकार के बडे बडे पौदे, भिन्न भिन्न आकार के फूल पत्तों से शोभायमान होकर, झूम रहे हैं । कहीं कही नदी के दोनो किनारे दूर तक घना जगल चला गया है । एक लम्बा, शाखाहीन सफेद डिठुवन का पेड पहाड पर तिरछा खडा है । उसकी छाँह नीचे नदी के चञ्चल जल में नाच रही है । बडी बडी लताये उस पेड से लिपट कर धीरे धीरे हिल रही हैं । उस पार्श्ववर्ती घने जगल मे कहीं कहीं केले का वन भी नजर आता है । कहीं कहीं छोटे छोटे झरने हैं जिनका जल बडे वेग से बह कर उस नदी मे आकर प्रवेश करता है । नदी का प्रवाह पत्थर के टुकडों पर होता हुआ नीचे की ओर गिरता है, उसका लगातार झर्झर शब्द पहाड से टकरा कर प्रतिध्वनित हो रहा है ।

गोविन्दमाणिक्य इसी नदी के किनारे, शीतल छाया मे उन झर्झर शब्दो का आनन्द अनुभव करते हुए, पहाड के नीचे अपनी शान्ति कुटी में रहने लगे और शान्ति-सुख से हृदय को भरने लगे । एकान्त प्रकृति का शान्तिमय प्रेम चारों ओर से झरनो की तरह उनके हृदय पर गिर कर उनके समस्त मानसिक

तापों को दूर करने लगा। वे धीरे धीरे अपने हृदय-गह्वर से क्रोध, अहङ्कार आदि बुरे दोषो को निकाल बाहर करने लगे। उन्होंने अपने हृदय का द्वार खोल दिया। उसमें स्वच्छ प्रकाश और ठंडी हवा ने प्रवेश करके उसके अन्धकार और उत्ताप को बिलकुल दूर कर दिया। किसने उनसे एक हाथ से उपकार ग्रहण करके दूसरे हाथ से उनके साथ कृतघ्नता का व्यवहार किया है, किसने उनसे सम्मानित होकर उनका अपमान किया है, इन सारी बातो को वे एक दम भूल गये। वे इस पर्वतवासिनी पुरातन प्रकृति की अविरत कार्यकारिता देख कर और उसकी शाश्वतिक चिन्तारहित शान्तिमय नवीनता देख कर आप भी मानो वैसे ही नूतन, निश्चिन्त और शान्त-स्वरूप हो उठे। उन्होंने अपने निष्काम प्रेम को मानों संसार की दशों दिशाओं मे फैला दिया। वे अपनी समस्त वासनाओं को दूर करके हाथ जोड कर बोले—"हे ईश्वर, तुम धन्य हो। तुमने सम्पत्ति-शिखर से गिरते हुए मुझे अपनी गोद में उठा कर इस यात्रा मे बचा लिया। मैं गिरा ही चाहता था। तुम्हारी कृपा से मैं अब बच गया। जब मैं राजा था तब मैंने अपना महत्त्व कुछ नहीं जाना। आज मैं अपना महत्त्व सारे संसार में फैला हुआ देख रहा हूँ।" वे आगे और कुछ बोल न सके। उनका गला भर आया। उनकी आँखो से आसू गिरने लगे। कुछ देर के बाद धीरज धर कर वे फिर बोले—नाथ, तुमने मेरे स्नेहाधार ध्रुव को मुझसे अलग कर

दिया । उसकी यन्त्रणा अब भी मेरे हृदय में कुछ कुछ होती है । यद्यपि मैं समझता हूँ कि तुमने यह अच्छा ही किया है तथापि उसके लिए कभी कभी हृदय अधीर हो उठता है । मैंने उस बालक के स्नेह में अपने समस्त कर्तव्यों को भूल कर अपने जीवन का उद्देश उसी के ऊपर निर्भर कर रक्खा था । तुमने सकट से मुझे बचाया । मैंने ध्रुव को अपने समस्त पुण्य का पुरस्कार मान कर ग्रहण किया । तुम उसका हरण करके शिक्षा दे रहे हो कि पुण्य का पुरस्कार पुण्य ही होता है । तुम्हारी इस शिक्षा के प्रभाव से मैं आज उस ध्रुव के पवित्र विरह-दु ख को सुख मान कर तुम्हारे अनुग्रह का अनुभव कर रहा हूँ । प्रभो ! मैं वेतन-स्वरूप काम्यफल ग्रहण करके सेवक की तरह काम न करूँगा । मैं केवल तुम्हारे प्रेम के वशवर्ती होकर तुम्हारी सेवा करूँगा ।

गोविन्दमाणिक्य ने देखा कि जो शान्तिमयी प्रकृति एकान्त में स्नेहधारा का सचय करती है, वह उसी को जन-समाज में घर घर नदी की भाँति प्रवाहित करती है । जो उस प्रेम-प्रवाह मे मग्न होता है उसका ताप शान्त हो जाता है, उसकी तृषा शान्त हो जाती है । जो उस प्रेमप्रवाह का स्पर्श नहीं करता उस पर प्रकृति का कोई दबाव भी नहीं । गोविन्दमाणिक्य ने अपने मन में सोचा—मैं भी अपने, इस जगह के, शान्तिमय सञ्चित प्रेम को लोगों में बाँटने के हेतु बाहर जाऊँगा । वे इस आश्रम को छोड कर बाहर निकले ।

सहसा राज्य छोड कर उदासीन होना, कहने मे जितना सुगम जान पडता है वास्तव में उतना सुगम नहीं है। राजकीय वेष को परित्याग करके गेरुआ वस्त्र-धारण करना कुछ सहज नहीं है। राज्य का परित्याग करना कदाचित् सहज हो भी सकता है किन्तु हम लोगो को जन्मकाल से जो छोटी छोटी आदतें पड गई हैं उनका छोडना सहज नहीं है। उन आदतों को हम एकाएक नहीं छोड सकते। वे आदतें अपनी तृष्णा के उत्कट आवेगों को लेकर हमारी नस नस में समा गई हैं। उनकी तृष्णा यथावसर पूरी न की जाय तो वे हमारे रुधिर को ही सोखने लग जायँ।

कोई यह न समझे कि गोविन्दमाणिक्य जितने दिन उस जनसमाजरहित कुटी में रहे उतने दिन वे आलसी की तरह पाँव फैलाये पडे रहे। नहीं, वे पग पग पर अपनी छोटी छोटी हजारों आदतों के साथ युद्ध करते थे। जब किसी चीज की कमी से उनका हृदय अधीर हो उठता था तब वे आप ही अपने को धिक्कारते थे। वे अपने मन की सहस्रमुखी तृष्णा को कुछ खाना न देकर धीरे धीरे नष्ट कर डालते थे। वे पग पग पर अपनी इन अनेक आदतों के ऊपर विजय प्राप्त कर सुख पाते थे। जिस तरह लोग दुर्दम्य घोडे को जोर से दौडा कर उसे थकाते हैं उसी तरह वे अभ्यस्त पदार्थों के न मिलने पर अपने अधीर हृद

दिया । उसकी यन्त्रणा अब भी मेरे हृदय में कुछ कुछ होती है । यद्यपि मैं समझता हूँ कि तुमने यह अच्छा ही किया है तथापि उसके लिए कभी कभी हृदय अधीर हो उठता है । मैंने उस बालक के स्नेह में अपने समस्त कर्तव्यों को भूल कर अपने जीवन का उद्देश उसी के ऊपर निर्भर कर रक्खा था । तुमने सकट से मुझे बचाया । मैंने ध्रुव को अपने समस्त पुण्य का पुरस्कार मान कर ग्रहण किया । तुम उसका हरण करके शिक्षा दे रहे हो कि पुण्य का पुरस्कार पुण्य ही होता है । तुम्हारी इस शिक्षा के प्रभाव से मैं आज उस ध्रुव के पवित्र विरह-दु ख को सुख मान कर तुम्हारे अनुग्रह का अनुभव कर रहा हूँ । प्रभो ! मैं वेतन-स्वरूप काम्यफल ग्रहण करके सेवक की तरह काम न करूँगा । मैं केवल तुम्हारे प्रेम के वशवर्ती होकर तुम्हारी सेवा करूँगा ।

गोविन्दमाणिक्य ने देखा कि जो शान्तिमयी प्रकृति एकान्त में स्नेहधारा का सचय करती है, वह उसी को जन-समाज मे घर घर नदी की भाँति प्रवाहित करती है । जो उस प्रेम-प्रवाह मे मग्न होता है उसका ताप शान्त हो जाता है, उसकी तृषा शान्त हो जाती है । जो उस प्रेमप्रवाह का स्पर्श नहीं करता उस पर प्रकृति का कोई दबाव भी नहीं । गोविन्दमाणिक्य ने अपने मन मे सोचा—मैं भी अपने, इस जगह के, शान्तिमय सञ्चित प्रेम को लोगों में बाँटने के हेतु बाहर जाऊँगा । वे उस आश्रम को छोड कर बाहर निकले ।

सहसा राज्य छोड़ कर उदासीन होना, कहने में जितना सुगम जान पड़ता है वास्तव में उतना सुगम नहीं है। राजकीय वेष को परित्याग करके गेरुआ वस्त्र-धारण करना कुछ सहज नहीं है। राज्य का परित्याग करना कदाचित् सहज हो भी सकता है किन्तु हम लोगों को जन्मकाल से जो छोटी छोटी आदतें पड़ गई हैं उनका छोड़ना सहज नहीं है। उन आदतों को हम एकाएक नहीं छोड़ सकते। वे आदतें अपनी तृष्णा के उत्कट आवेगों को लेकर हमारी नस नस में समा गई हैं। उनकी तृष्णा यथावसर पूरी न की जाय तो वे हमारे रुधिर को ही सोखने लग जायँ।

कोई यह न समझे कि गोविन्दमाणिक्य जितने दिन उस जनसमाजरहित कुटी में रहे उतने दिन वे आलसी की तरह पाँव फैलाये पड़े रहे। नहीं, वे पग पग पर अपनी छोटी छोटी हजारों आदतों के साथ युद्ध करते थे। जब किसी चीज की कमी से उनका हृदय अधीर हो उठता था तब वे आप ही अपने को धिक्कारते थे। वे अपने मन की सहस्रमुखी तृष्णा को कुछ खाना न देकर धीरे धीरे नष्ट कर डालते थे। वे पग पग पर अपनी इन अनेक आदतों के ऊपर विजय प्राप्त कर सुख पाते थे। जिस तरह लोग दुर्दम्य घोड़े को खूब जोर से दौड़ा कर उसे थकाते हैं उसी तरह वे अपने अभ्यस्त पदार्थों के न मिलने पर अपने अधीर हृदय को अभावरूपी मरुस्थल के मैदान में बार बार दौड़ा कर शान्त

करते थे। उन आदतों के कारण उन्हें बहुत दिनों तक चैन न मिला।

गोविन्दमाणिक्य पहाड़ी प्रदेश को छोड़ कर दक्षिणी समुद्र की ओर चले। वे वासना की सारी परतन्त्रता का परित्याग करके अपने मन में स्वाधीनता का सुख अनुभव करने लगे। अब एक भी विघ्नकर्ता उनके पास न रहा। आगे बढ़ने में अब उन्हें कोई किसी तरह की बाधा नहीं पहुँचा सकता। उन्होंने प्रकृति को व्यापक रूप में देखा और अपने को भी उसी का एक परमाणु माना। वे हरित वृक्षों में, लताओं में और सूर्य्य की सुनहरी किरणों में प्रकृति की अपार शोभा देखने लगे। वे मनुष्यों के हँसने, बोलने, उठने, बैठने और चलने-फिरने में एक अपूर्व आनन्द पाने लगे। उन्होंने जिसे देखा उसी को पास बुला कर और उसके साथ बातें करके सुख पाया। जिसने उनकी उपेक्षा की उस पर भी उनके हृदय का सद्भाव बना रहा। उनके मन में दुर्बलों की सहायता करने और दुखियों का यथासाध्य उपकार करने की अभिलाषा विशेष रूप से जागृत हो उठी। उन्होंने अपने समस्त बल तथा समस्त सुखों को परोपकार के लिए त्याग दिया। उन्हें अब अपना कोई काम न रहा, न किसी पदार्थ की वासना ही रही। इस जड-चेतनमय संसार में जो दृश्य दूसरे को दिखाई नहीं देते थे वे सब नूतन स्वरूप धारण करके उनकी दृष्टि के सामने आने लगे। वे जब दो लड़कों को सड़क पर

बैठे खेलते हुए देखते थे, जब दो भाइयों को, पिता-पुत्र को, माँ और बच्चे को एक साथ बैठे देखते थे, फिर वे चाहे धूलि-धूसरित हों, दरिद्र हों, चाहे कृपण, तब वे उनमें मनुष्य के अतिविस्तृत हृदय-समुद्र का एक अपार प्रेम देखते थे। जो माता बच्चे को गोद में लिये हुए है, मानो उसी माँ को वे भूत और भविष्य के समस्त बालकों की माता मानते थे। दो मित्रों को परस्पर मधुरालाप करते देख कर वे समस्त मनुष्य-जाति को इसी तरह मित्रता के प्रेम मे अनुरक्त होने का अनुभव करते थे। वे जिस पृथ्वी को पहले प्राय मातृहीना समझते थे उसी को अब उन्होंने नीचे नजर किये चिरकाल से जागी हुई माता की गोद मे बैठे पाया। ससार के दु ख, शोक, दारिद्र्य, विवाद आदि देख कर भी अब उनके मन में घबराहट नहीं होती। वे अब किसी का दुख देख कर हताश नहीं होते। किसी तरह का शुभ लक्षण देखते ही उनकी आशा हजारों अशुभों की आशङ्का से पार हो कर एकाएक खिल उठती थी। हम लोगों की सारी जिन्दगी मे क्या एक दिन भी ऐसे अभूत-पूर्व नये प्रेम और नई स्वाधीनता का उदय न हुआ होगा जिस दिन इस सुख-दु खमय ससार को एक सुन्दर सुकुमार बालक की तरह प्रेमोल्लसित विनोद की गोद में प्रफुल्ल भाव से बैठा देखा होगा ? हम लोगों के लिए भी कोई दिन ऐसा आ सकता है जिस दिन कोई हम लोगों को विचलित नहीं कर सकता, कोई हमको किसी सांसारिक सुख से वञ्चित नहीं कर सकता और

कोई हमको किसी क़िले के अंदर वन्द करके नहीं रख सकता। किसी दिन हम लोगों के लिए भी एक अपूर्व आनन्द-सितार का तार वज उठता है। एक अपूर्व वसन्त ऋतु की शोभा झलक पड़ती है और युवत्व के आनन्द से सारा ससार भर जाता है। कोई दिन ऐसा भी आता है कि जिस दिन सारा दु ख-दारिद्रय मन में नहीं रह जाता। नवीन स्वाधीनता की उमङ्ग मे, अनिवार्य्य स्वतन्त्रता के साम्राज्य में, उदार हृदय गोविन्दमाणिक्य को आज वही दिन प्राप्त हुआ है।

चटगाँव से दक्खिन की ओर रामूशहर अब भी दस कोस पर है। शाम होने के कुछ पहले गोविन्दमाणिक्य जब अलमखाल नामक एक छोटी सी वस्ती मे पहुँचे तब उन्हे उस गाँव के प्रान्त मे एक घर के अन्दर से एक खिन्न-कण्ठ वालक के रोने का शब्द सुनाई देने लगा। इससे गोविन्दमाणिक्य का हृदय अत्यन्त उद्विग्न हो उठा। वे उसी घडी उस घर के भीतर गये। उन्होंने देखा कि एक युवा एक दुवले पतले लडके को गोद में लिये घर के भीतर इधर उधर टहल रहा है। लडका थर थर काँप रहा है और ज़रा देर ठहर ठहर कर रो उठता है। वह युवक उसको अपनी छाती से लगा कर सुलाने की चेष्टा कर रहा है। एकाएक सन्यास-वेष-धारी गोविन्दमाणिक्य को देख कर वह सकपका गया। उसने अधीर स्वर मे कहा—"स्वामीजी, इस लड़के को आशीर्वाद दीजिए।" गोविन्दमाणिक्य ने अपना कम्वल निकाल कर अच्छी तरह उस वालक को उढा दिया।

लडके ने एक बार अपना सिर उठा कर गोविन्दमाणिक्य की ओर देखा। उसकी आँखों के नीचे झाँई पड गई थी। उसके सूखे से मलिन चेहरे में दो आँखों के सिवा और कुछ नहीं मालूम होता था। वह गोविन्दमाणिक्य को देख कर एक बार, अपने पतले सफेद होठों को हिला कर, अस्पष्ट शब्दों में कुछ बोला। तदनन्तर अपने बाप के कन्धे पर माथा रख कर चुप हो रहा। उस युवा ने लडके को नीचे बैठा कर राजा को प्रणाम किया और उनके पैरों की धूल लेकर लडके के माथे पर और शरीर मे लगाई। राजा ने उस लडके को अपनी गोद मे लेकर उस युवा से पूछा—"इस लडके के बाप का नाम क्या है" ? युवा ने कहा—"इसका बाप मैं ही हूँ। मेरा नाम यादव है।" वह आँखो मे आँसू भर कर कहने लगा—"दैव ने एक एक कर मेरे सब लडके छीन लिये। अब सिर्फ यही एक रहा गया है।" इसके बाद उसने ठण्डी साँस ली। राजा ने उस युवा से कहा—"आज की रात मैं तुम्हारे ही यहाँ अतिथि के रूप मे रहूँगा। मैं कुछ भोजन न करूँगा। अतएव मेरे लिए भोजन आदि का प्रबन्ध न करो। केवल यहाँ रह कर रात बिताऊँगा।" गोविन्दमाणिक्य उस रात वहीं रहे। उनके साथ के नौकरों ने एक धनवान् कायस्थ के घर जाकर आतिथ्य ग्रहण किया। देखते ही देखते साँझ हो गई। उस घर के नजदीक सेवार से ढका एक तालाब था। उसके ऊपर से भाप उडने लगी। ग्वालों के घर से धूर जलाने का धुआँ, सीधे आसमान की ओर न जाकर, चक्कर लगाता हुआ

सामने के बडे लम्बे चौडे जलाशय और मैदान मे फैल गया। झाडियो मे झिल्लियाँ कर्कश स्वर में बोलने लगीं, हवा बन्द हो गई। पेड का पत्ता तक नहीं हिलता। तालाब के दूसरे किनारे पर बाँसों का घना जंगल है। उन बाँसो की झाडो मे से एक चिडिया रह रह कर टर् टर् करके बोल उठती है। दिये की धुँधली रोशनी में गोविन्दमाणिक्य उस रोगी बालक का मलिन मुँह देख रहे हैं। वे उसे भली भाँति कम्बल से ढक कर उसके पास ही बैठ कर उसे तरह तरह के किस्से सुनाने लगे। सन्ध्या बीत चली। गीदड बोलने लगे। लडका किस्सा सुनते सुनते बीमारी की तकलीफ़ भूल कर सो गया। राजा दूसरे कमरे में, जो उस कमरे के पास ही था, जाकर सो गये। रात में उन्हे नींद नहीं आई। सारी रात वे ध्रुव की ही बाते सोचते रहे। राजा ने मन ही मन कहा—मैं ध्रुव को खोकर अब सभी लडको को ध्रुव के ही समान समझता हूँ।

जब दिन निकलने को हुआ तब राजा ने सुना कि लडका जाग कर अपने बाप से पूछ रहा है—बाबू जी, क्या बजता है?

बाप ने कहा—ढोल।

बालक—ढोल क्यों बजता है?

बाप—कल पूजा है।

लडका—कल पूजा है? पूजा देखने के लिए मुझे कुछ न दोगे?

बाप—क्या दूँ बेटा?

लडका—मुझको एक लाल दुशाला न दोगे ?

बाप—मैं दुशाला कहाँ पाऊँगा ? मेरे लाल, मेरे पास कुछ नहीं है।

लडका—तुम्हारे पास कुछ नहीं है ?

बाप—हाँ, बेटा, कुछ नहीं है, केवल तुम्हीं एक हो। यह कह कर उसने जो फटे हृदय से एक दीर्घ निश्वास लिया तो उस पासवाले कमरे में लेटे हुए राजा ने सुन लिया।

इसके बाद लडका फिर कुछ न बोला। मालूम होता है, वह बाप की छाती से लग कर सो गया।

दिन अच्छी तरह निकलने भी न पाया था कि गोविन्द-माणिक्य उठ बैठे। घर मालिक को अपने जाने की सूचना बिना दिये ही घोडे पर सवार हो वे रामूशहर की तरफ चल पडे। उन्होंने दिन मे न कुछ खाया, न पिया और न कहीं विश्राम ही किया। रास्ते मे एक छोटी सी नदी मिली। घोडे पर चढे ही चढे वे नदी पार हो गये। दुपहरी की कडी धूप के वक्त वे रामूशहर मे पहुँचे। वहाँ उन्होंने अधिक देर न लगाई। शाम होने के कुछ पहले ही वे यादव के घर लौट आये। यादव को एकान्त में बुला कर उन्होंने अपनी झोली से एक लाल दुशाला निकाला और उसके हाथ मे देकर कहा—आज पूजा के दिन यही शाल तुम अपने लडके को दो।

यादव ने रोकर उनके पैर पकड लिये और कहा—स्वामीजी, आप ही अपने हाथ से

राजा—नहीं, मैं न दूँगा। मेरे देने से कोई फल न होगा। तुम मेरा नाम भी न लेना। मैं केवल तुम्हारे लड़के के मुँह पर आनन्द की मुसकुराहट देख कर चला जाऊँगा।

उस रोगी बालक के अत्यन्त खिन्न मलिन मुँह को विकसित होते देख राजा चले गये। वे दुःखी होकर मन ही मन कहने लगे—हाय! मैं किसी काम का नहीं। मैंने कई वर्ष तक केवल राज्योपभोग ही किया। कुछ सीखा नहीं। किस तदबीर से इस छोटे से लड़के का रोग हटेगा, यह मैं नहीं जानता। मैं केवल निरुपाय अकर्मण्य होकर शोक करना जानता हूँ। यदि बिल्वन ठाकुर होते तो इसका कुछ उपकार वे अवश्य कर जाते। हे ईश्वर, मैं भी यदि बिल्वन ठाकुर के सदृश हो जाता तो कैसा अच्छा होता।

गोविन्दमाणिक्य ने निश्चय किया कि मैं अब इधर उधर भटकता न फिरूँगा। जन-समाज में रह कर काम करना सीखूँगा।

रामूशहर के दक्खिन ओर, राजपुर के क़रीब, मग लोगों का जो किला है उसी में वे, अराकान के राजा से आज्ञा लेकर, रहने लगे।

गाँववालों के जितने लड़के-बाले थे वे सबके सब किले के अन्दर गोविन्दमाणिक्य के पास आ गये। गोविन्दमाणिक्य ने उन लड़कों के लिए एक बड़ी पाठशाला खोली। वे उन्हें पढ़ाते थे और जब तब उनके साथ खेलते थे। कभी कभी वे उनके साथ जाकर उन्हीं के घर पर रह जाते थे। जो लड़के बीमार

हो जाते थे उन्हे देखने के लिए वे स्वय उनके घर जाते थे। सब लडके स्वर्ग से आये हैं अथवा वे देव-बालक हैं—यह बात नहीं है। मनुष्यो और राक्षसो में क्या भेद है—वे इतना भी नहीं जानते। उन लोगो में स्वार्थपरता, क्रोध, लोभ, द्वेष और हिंसा-बुद्धि बडी ही प्रबल थी। माँ-बापो के पास घर पर उन्हे अच्छी शिक्षा मिलती हो सो भी नहीं। इस कारण गोविन्दमाणिक्य ने उन लडको को सुशिक्षित करना नितान्त आवश्यक समझा। किला बिलकुल खाली पडा था। वह अब मगजाति के बालको से भर गया। मानो किले के अन्दर उनञ्चास वायु और चौसठ तत्त्व मिल कर एक साथ रहने लगे। गोविन्दमाणिक्य इन्ही सामग्रियो को एकत्र कर बडी धीरता से उन्हें मनुष्य बनाने की चेष्टा करने लगे। मनुष्य का जीवन कैसा श्रेष्ठ है और किस प्राणपण से यत्न-पूर्वक उसकी रक्षा करनी चाहिए, यह गोविन्द-माणिक्य भली भाँति जानते हैं। वे अपने चारों ओर मनुष्यो को कर्तव्य-परायण देखना चाहते हैं और चाहते हैं कि असख्य फलों से भरा हुआ मनुष्य-जन्म सार्थक हो। गोविन्द-माणिक्य अपनी चेष्टा से इसी का साधन करके अपना शेष जीवन बिताना चाहते हैं। इसके लिए वे सभी कष्ट और सभी विघ्न-बाधाओं का सहन कर सकते हैं। उन्हें कभी कभी खेद इस बात का हो आता है कि हम अपने काम को अच्छी तरह पूरा नहीं कर सकते। वे सोचते हैं कि बिल्वन ठाकुर साथ रहते तो अच्छा होता।

इस प्रकार गोविन्दमाणिक्य सैकड़ों ध्रुवो को लेकर समय बिताने लगे।

तेंतालीसवाँ परिच्छेद

इधर शाह शुजा, अपने भाई औरङ्गजेब की सेना से पराजित होकर, भागने का उद्योग कर रहे हैं। इलाहाबाद के पास रण-भूमि में उनकी हार हुई। शत्रु से हार कर शुजा इस विपत्ति के समय अपने पक्ष के लोगो का भी विश्वास न कर सके। वे अपमानित और शङ्कित होने के कारण वेष बदल कर, साधारण मनुष्य की तरह, अकेले भाग चले। शुजा जहाँ जाते हैं वहीं उनके पीछे विजय-पताका लिये शत्रुसेना आ पहुँचती है। मानो उनके साथ ही साथ शत्रु-सेना के घोड़ो की टाप लगी फिरती है। आखिर जैसे तैसे वे पटना पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने फिर नवाब का रूप धारण करके अपने आने की खबर सब पर जाहिर की। वे अभी पटना पहुँचे ही थे कि इतने में औरङ्गजेब का बेटा मुहम्मद सेना के साथ पटने के पास आ पहुँचा। शुजा तुरन्त पटना छोड मुङ्गेर भाग गये।

उनके खोये हुए कितने ही सिपाही और साथी लोग जहाँ तहाँ से आ आकर मुङ्गेर मे उनके पास जुटने लगे। यहाँ उन्होंने सेना में नये जवान भर्ती किये। तेलिया गढ़ी और सिकली गली के किले की मरम्मत करके और नदी के किनारे

पहाड के ऊपर दीवारें खडी करके वे एक प्रकार से निश्चिन्त हो बैठे।

इस अरसे में औरङ्गजेब ने अपने चतुर सेनापति मीरजुम्ला को शाहजादा मुहम्मद की सहायता करने भेजा। मुहम्मद ने प्रकट रूप से मुङ्गेर के किले के पास आकर अपना डेरा डाल दिया। मीरजुम्ला छिप कर दूसरे रास्ते से मुङ्गेर की तरफ रवाना हुआ। जब शुजा मुहम्मद के साथ छोटी मोटी लडाइयो में मग्न थे तब एकाएक खबर मिली कि मीरजुम्ला बहुत बडी सेना के साथ वसन्तपुर में आ पहुँचा है। इससे घबरा कर शुजा झट अपनी सेना को साथ ले मुङ्गेर छोड कर राजमहल भाग गये। उनके बाल-बच्चे वहीं थे। बादशाह की सेना ने बहुत जल्द वहाँ भी उनका पीछा किया। शुजा छ दिन तक उस सेना के साथ खूब लडे। आखिर जब उन्होंने देखा कि अब रक्षा का कोई उपाय नहीं है तब एक दिन वे चुपचाप उस भयङ्कर अँधेरी रात मे अपने बाल-बच्चे, और जितना बना उतनी धन सम्पत्ति, ले नदी पार होकर तोण्डा भाग गये और बहुत जल्द वहाँ के किले की मरम्मत कराने लगे।

बरसात का मौसम आ पहुँचा। वर्षा के जल से नदी-नाले भर गये। बादशाह की सेना आगे न बढ सकी।

इस लडाई-दगे के पहले शाहजादा मुहम्मद के साथ शुजा की लडकी के ब्याह की बात पक्की हो गई थी। किन्तु लडाई छिड जाने से उस प्रस्ताव को दोनो पक्षवाले भूल गये थे।

वर्षा के कारण युद्ध बन्द है। मीरजुम्ला राजमहल से कुछ आगे अपना खेमा ले गया। ऐसे समय तोण्डा की छावनी से एक सवार ने आकर चुपचाप मुहम्मद के हाथ मे एक खत दिया। शाहजादे ने उसे खोल कर पढा। शुजा की लडकी ने लिखा था—शाहजादा साहब, मेरे नसीव मे क्या यही बदा था। मैं जिनको मन ही मन शौहर समझ करके अपना दिल दे चुकी हूँ, जो अँगूठी बदल कर मेरे साथ शादी करने का कौल कर चुके हैं, वे आज हाथ में चोखी तलवार लेकर मेरे बाप का गला काटने आये हैं। मुझे क्या यही देखना था? मेरे और आपके व्याह का क्या यही उत्सव मनाया जा रहा है? इसी के लिए इतना आडम्बर! क्या इसी से आज हम लोगों का राजमहल लाल हो रहा है? क्या इसी की खुशी मे शाहजादा दिल्ली से लोहे की जंजीर हाथ मे लिये आये हैं? मुहब्बत की क्या यही जजीर है?

यह खत पढते ही मानो एकाएक मुहम्मद के पैरो के नीचे से धरती खिसक गई। उनका हृदय फट गया। वे काँप उठे। वेचैन हो उठे। उन्होंने उसी घडी बादशाहत की आशा और बादशाह के अनुग्रह को तिलाञ्जलि दे दी। उन्होने अपनी नई जवानी की धधकती हुई आग मे अपने हानि-लाभ की विवेचना का हवन कर दिया। उन्हे अपने बाप का सारा काम अन्याय-पूर्ण और कठोर जँचने लगा। पिता की कपट से भरी कठोर अनीति के विरुद्ध इसके पहले भी वे पिता के सामने

अपनी राय साफ साफ जाहिर किया करते थे, इस कारण बादशाह कभी कभी उन पर असन्तोष भी प्रकट करते थे। आज वे अपने कई एक प्रधान सेनाध्यक्ष को बुला कर बादशाह की निर्दयता, कुटिलता और अत्याचार पर खेद प्रकट करते हुए बोले—"मैं अपने चाचा से मिलने तोण्डा जाऊँगा। अगर तुम लोग सच्चे दिल से मुझे प्यार करते हो तो मेरे साथ चलो।" सेनापतियो ने लम्बा सलाम करके फौरन कहा—"शाहजादा साहब जो फरमा रहे हैं वह बहुत ठीक है। कल लगभग आधी सेना तोण्डा की छावनी मे शाहजादा के साथ जा मिलेगी।" मुहम्मद उसी दिन नदी पार होकर शुजा के खेमे मे पहुँचे।

तोण्डा मे सर्वत्र आनन्द छा गया। सब लोग लडाई-दगे की बात एकदम भूल गये। इतने दिन केवल पुरुष ही काम-काज मे दिन रात व्यग्र रहते थे। इस समय शुजा के घर मे स्त्रियो का इतना काम बढ गया कि उन्हे दम लेने तक की फुरसत नहीं। शुजा ने बडी मुहब्बत और खुशी के साथ मुहम्मद का स्वागत किया। अविरत रक्तपात होने के बाद एकाएक रक्तप्रवाह की गति रुक जाने से मानो खून ने दोनों के बदन मे जोर पकडा। खुशी खुशी शुजा की लडकी के साथ मुहम्मद की शादी हो गई। ब्याह का उत्सव समाप्त होते होते खबर आई कि बादशाह की सेना आ रही है

मुहम्मद जैसे ही शुजा के खेमे मे गये वैसे ही से

ने मीरजुम्ला के पास खबर भेजी । बादशाह की एक भी फौज मुहम्मद के साथ न मिली । वे लोग समझ गये थे कि मुहम्मद अपनी इच्छा से विपत्ति के समुद्र मे कूद पडे हैं । उनके दल मे जाकर सम्मिलित होना निरा पागलपन है ।

शुजा और मुहम्मद को विश्वास था कि बादशाह की अधिकांश सेना रणभूमि में हमारे साथ आ मिलेगी । इसी आशा पर मुहम्मद अपनी झडी फहराते हुए रणभूमि मे आ पहुँचे । बादशाह की सेना का एक बडा दल उनकी ओर अग्रसर हुआ । मुहम्मद मारे खुशी के फूल उठे । जब नजदीक आ कर उन लोगो ने मुहम्मद की सेना पर गोला बरसाना शुरू किया तब शाहजादे की आँखे खुलीं । किन्तु अब आँख खुलने पर होही क्या सकता है । समय न रहा । शुजा की सेना भागने पर हुई । शुजा के बडे बेटे समरशायी हुए ।

बदनसीब शुजा उसी रात को अपने दामाद और बाल-बच्चो के साथ तेज चलनेवाली नाव पर चढ कर ढाका भाग गये । मीरजुम्ला ने ढाके तक शुजा का पीछा करना जरूरी न समझा । वह अपने अधिकृत देश मे शान्ति-स्थापन करने की ओर प्रवृत्त हुआ ।

शुजा के दुःख के दिनो मे, जब मित्रवर्ग एक एक करके विमुख होते जाते थे तब मुहम्मद ने अपने धन, प्राण, सम्मान आदि की कुछ परवा न करके उसका पक्ष लिया । इस कारण शुजा का हृदय मोम की तरह पिघल उठा । वे दिलोजान से मुहम्मद

को प्यार करने लगे। इसी समय औरङ्गजेब का एक जासूस चिट्ठी के साथ ढाका शहर में पकड़ा गया। उसकी चिट्ठी शुजा के हाथ लगी। औरङ्गजेब ने मुहम्मद को लिखा था—मेरी आँखों के पुतले प्यारे मुहम्मद, मैंने जिस काम के लिए तुम्हें भेजा था उसे तुम पूरा नहीं कर सके। तुमने अपने कर्तव्य का पालन न करके अपने स्वच्छ यश में धब्बा लगा लिया। ललना के कपटपूर्ण हास्य में मुग्ध होकर तुम अपना कर्तव्य भूल गये। बड़े खेद की बात है कि जिसको किसी समय समस्त मुगल साम्राज्य का शासन करना पड़ेगा वह आज एक नाजनी के नयन-तीर का निशाना हो रहा है। जा हो, जब तुमने खुदा ताला के नाम पर शपथ खाकर खेद प्रकट किया है तब मैं तुम्हें क्षमा प्रदान करता हूँ। किन्तु जिस काम के लिए तुम वहाँ ठहरे हो उसे पूरा करके जब आओगे तब हमारे पूर्ण अनुग्रह के अधिकारी बनोगे।

शुजा का हृदय काँप उठा। मानो उन पर एकाएक वज्र-पात हुआ। मुहम्मद ने बार बार कहा कि "मैंने पिता के निकट कभी कुछ खेद प्रकट नहीं किया है। यह सब पिताजी का कपट कौशल है"। किन्तु शुजा का सन्देह दूर न हुआ। शुजा तीन दिन तक बराबर सोचते ही रहे। आखिर चौथे दिन उन्होंने कहा—सुनो प्यारे मुहम्मद, हम लोगों में विश्वास का बन्धन ढीला पड़ गया। अतएव मैं तुमसे अनुरोध करता हूँ कि तुम अपनी स्त्री को लेकर जहाँ चाहो चले

फकीर परस्पर मिले । वे एक दूसरे को देख कर चकित हुए । गोविन्दमाणिक्य ने ध्यान से उसकी ओर देखा—फकीर वास्तव में फकीर न जान पडा । स्वार्थ से भरी हुई छोटी छोटी वासनाओ को हृदय से हटा कर, शुद्ध मन से ईश्वर के भजन करने पर जो एक प्रकार का तेज मुखमण्डल पर प्रकाशमान होता है वह फकीर के मुँह पर उन्हे न देख पडा । फकीर चौकन्ना और चकित सा दिखाई दे रहा है । उसके हृदय की तृषित वासना मानो उसकी प्रज्वलित आँखों से अग्निपान कर रही है । उसके मन के भीतर रुकी हुई हिंसा मानो अपने को आप ही काट काट कर खा रही है । साथ मे जो उसके तीन लडके हैं उनके थके माँदे सुन्दर सुकुमार शरीर और एक प्रकार का गौरवान्वित सङ्कोच देखने से मालूम होता है मानो वे जन्म से ही बडी हिफाजत और इज्जत के साथ पाले गये हैं । नीचे की जमीन से उनका मानो कुछ सम्बन्ध ही नहीं । मानो पहले ही पहल इन लोगो ने धरती पर पैर रक्खे हैं । पैदल चलने से पैरो की उँगलियों मे धूल लगती है, इसके पहले प्राय कभी इन लोगो को इसका अनुभव न हुआ था । धूल से भरी पृथ्वी की इस दरिद्रावस्था पर मानो पग पग में इन लोगो को घृणा हो रही है । मसनद और मिट्टी मे तफावत का ख्याल करके वे पग पग पर मानो धरती को धिक्कार दे रहे हैं । मानो धरती ने उन लोगो पर विशेष ईर्ष्या करके अपनी बडी मसनद को उठा कर कहीं रख छोडा है । जिन जिन बातो मे उन्हे तकलीफ पहुँचती है वे

सभी मानों उनसे शत्रुता कर रही हैं। दरिद्र लोग भीख के लिए मैला कपडा लेकर जो उनके पास घुस आने का साहस करते हैं यह सिर्फ उनकी शरारत है। जैसे कुत्ते को पीछे आते देख खाने की थोडी सी चीज दूर से लोग फेंक देते हैं वैसे ही ये भूखे मैले कुचैले भिखमँगे को देख कर नाक सिकोडते हुए दूर ही से मुट्ठी भर रुपया बेतकल्लुफ फेंक देते थे। इन लोगों की आँखो के सामने लोगो की साधारण अवस्था, फटे मैले कपडे और मुफलिसी मानो बडा बे अदबो समझी जाती थी। ये लोग जो इस समय ससार में सुखी और सम्मानित नहीं हो रहे हैं, यह केवल ससार का ही दोष है। गाविन्दमाणिक्य ने इन वाहियात बातो को थोडे ही सोचा होगा। वे तो उसका लक्षण देख कर ही समझ गये कि यह अपनी सम्पूर्ण वासनाओं को त्याग कर स्वतन्त्रता-पूर्वक ससार का उपकार करने के हेतु बाहर नहीं निकला है। यह तो अपनी आशा सफल न होने के कारण रुष्ट होकर घर से निकल पडा है। फकीर के मन में इसी की चिन्ता हो रही है कि "मैं जो चाहता हूँ सो मुझे ससार में क्यों नहीं मिलता। और ससार मुझसे जो कुछ चाहता है वह उसे कभी मौका मिलने पर दे दूँगा और न भी दूँ तो कोई हर्ज नहीं। ससार मुझको मनमाना सुख क्यो नहीं देता।" इसी कारण ससार से बिगड़ कर और उसे अग्राह्य की तरह परित्याग करके यह फकीर मानों ससार से अलग हो गया है।

फकीर ने जब गोविन्दमाणिक्य को देखा तब उसका पहला खयाल बिलकुल बदल गया। वह निश्चय न कर सका कि उन्हे राजा कह कर पुकारे अथवा सन्यासी कह कर, उसने तो अपने मन मे समझ रक्खा था कि तोद बढाये, पगडी पहने किसी मोटेमल को देखेंगे, अथवा मलिन सन्यासी को सारी देह मे भस्म लगाये, धरती पर लेटे, और अपनी साधुता पर गर्व करते हुए दरिद्रवेष मे देखेंगे। पर इन दोनो में उसे एक भी न देख पडा। गोविन्दमाणिक्य को देख कर उसे ऐसा जान पडा जैसे उन्होने अपनी इच्छा से सब कुछ त्याग दिया है, तब भी सब कुछ मानो उन्हीं का हो रहा है। उन्हे कुछ प्राप्त करने की इच्छा नहीं है फिर भी मानो सब कुछ प्राप्त कर लिया है। उन्होने जिस प्रकार आत्मसमर्पण किया है, उसी प्रकार मानो समस्त संसार ने उनकी सेवा मे अपने को समर्पित कर दिया है। किसी प्रकार का राजसी ठाट नहीं तो भी वे राजा कहलाने योग्य हैं। इसी तरह ससार के सभी कामो को करते हुए भी वे सन्यासी बने हुए हैं। इस कारण फकीर न उन्हें राजा कह सकता है, और न सन्यासी ही।

राजा ने उन अतिथियो को बडे आदर से ठहराया, विधि-वत् उनकी सेवा की। किन्तु उन लोगो ने राजा के आतिथ्य को बड़े अनादर के साथ ग्रहण किया। ऐसा करने का मानो उन्हें अधिकार था। उन अतिथियो ने राजा पर प्रकट कर दिया कि हमें आराम के लिए अमुक अमुक चीजों की आवश्यकता है,

राजा ने वडे लडके से स्नेह के साथ पूछा—रास्ता चलने से क्या तुम्हे थकावट अधिक जान पडती है ?

लडका इसका कुछ उचित उत्तर न देकर फकीर के पास दबक कर बैठ गया । राजा ने उन लोगों की ओर स्नेह-दृष्टि से देखा और मुसकुरा कर कहा—"तुम लोगो का यह सुकुमार शरीर रास्ता चलने योग्य नहीं है । तुम लोग कुछ दिन इस किले में रहो । तुम को मैं वडी हिफाजत से रक्खूँगा । किसी तरह का कष्ट न होने दूँगा ।" राजा की इस बात का जवाब देना उचित है या नहीं ? अगर उचित ही है तो क्या जवाब देना चाहिए ? यह लडको को क्या मालूम । वे लोग जानते ही नहीं कि दूसरे के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए । फकीर के मुँह की ओर वे तीनो देखने लगे और उसके पास और भी सट कर बैठ गये । उन लडको ने समझा कि शायद यह आदमी अपने मैले हाथ को बढा कर हमें अपनी ओर खींचना चाहता है ।

फकीर ने गम्भीर स्वर मे कहा—"अच्छा, हम लोग तुम्हारे इस किले में कुछ दिन रह सकते हैं ।" मानों [illegible] राजा के ऊपर बडा एहसान किया । फकीर ने मन ही [illegible] कहा—अगर तुम मुझे वह (शुजा) समझते तो मेरे द्वारा [illegible] से तुम्हें बेहद खुशी होती ।

वे तीनों लडके राजा से किसी तरह भी दिल [illegible], और फकीर तो मानों एक-दम निरपेक्ष ही हो रहा ।

फकीर ने गोविन्दमाणिक्य से पूछा—सुना है, तुम किसी समय राजा थे। कहाँ के राजा थे ?

गोविन्दमाणिक्य—त्रिपुरा के ।

यह सुन कर लडको ने उन्हें महज छोटा करके समझा, यद्यपि उन्होने कभी त्रिपुरा का नाम भी न सुना था।

फकीर ने कुछ अचम्भे में आकर फिर पूछा—"तुम राज्य-च्युत क्यो हुए ?" गोविन्दमाणिक्य जरा चुप हो रहे। अन्त में उन्होने कहा—"बगाल के नवाब शाह शुजा ने मुझे राज्य से निर्वासित कर दिया है।" उन्होने नक्षत्रराय का कोई जिक्र न किया।

यह सुन कर सभी लड़के चौक कर फकीर के चेहरे की ओर देखने लगे। फकीर का मुँह मलिन हो गया। मानों उसे किसी पुरानी बात की याद आगई हो। आखिर उसने सहसा कह दिया—मालूम होता है, तुम्हारा भाई ही तुम्हारे निर्वासन का कारण हुआ। उसी ने तुम्हारा राज्य हडप कर तुम्हें सन्यासी बना डाला।

राजा ने आश्चर्य करके कहा—"साहब, आपने इन बातो को कैसे जाना।" फिर उन्होंने मन में सोचा कि इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है। उन्होंने किसी से सुना होगा।

फकीर ने फौरन कहा—मुझे कुछ मालूम नहीं। मैंने सिर्फ अटकल से कहा है।

जब रात हुई तब फकीर लडको को साथ लेकर सोने गया।

उसको रात भर नींद न आई। वह जागते ही जागते दुःस्वप्न देखने और रह रह कर चौंकने लगा।

दूसरे दिन सबेरे फकीर ने कहा—एक बहुत जरूरी काम है। अतएव हम लोग अब यहाँ अधिक दिन नहीं ठहर सकते। हम लोग यहाँ से आज ही विदा होंगे।

गोविन्दमाणिक्य—लडके बहुत थके हैं। उन्हें कुछ दिन विश्राम कर लेने दीजिए तब फिर जब आपका जी चाहे, चल दीजिएगा।

इस पर लडको को कुछ क्रोध हो आया। उनमे जो सबसे बडा था उसने फकीर की ओर देख कर कहा—हम लोग बिलकुल बच्चे नहीं हैं। जरूरत पडने पर हम लोग प्रसन्नता से कष्ट सह सकते हैं।

गोविन्दमाणिक्य की स्नेहभरी बाते न मालूम उन लडको को क्या अच्छी नहीं लगतीं। वे गोविन्दमाणिक्य से सम्मानित होकर रहना नहीं चाहते।

रहने के लिए फकीर से विशेष आग्रह करना गोविन्दमाणिक्य ने उचित नहीं समझा। अतएव वे चुप हो रहे।

फकीर जिस समय जाने की तैयारी कर रहा था उसी समय किले मे एक और अतिथि आया। उसे देख कर राजा और फकीर दोनो चकित हुए। फकीर का चेहरा उतर गया। उसे कुछ सूझ न पडा कि मैं अब क्या करूँ। वह चकित हो कर इधर उधर देखने लगा। राजा ने अपने अतिथि को प्रणाम

किया । अतिथि और कोई नहीं, वही रघुपति है । रघुपति ने राजा को आशीर्वाद दिया—जय हो ।

राजा ने बड़े व्यग्र होकर पूछा—आप नक्षत्र के पास से आ रहे हैं ? क्या कोई नया हाल है ?

रघुपति ने कहा—नक्षत्रराय कुशलपूर्वक हैं । उनके लिए आप कोई चिन्ता न करें । (आकाश की ओर हाथ उठा कर) जयसिंह ने मुझे आपके पास भेजा है । वे अब इस संसार में नहीं हैं । जब तक मैं उनके मन की बात पूरी न करूँगा तब तक मुझे चैन कहाँ । मैं अब बराबर तुम्हारे साथ रहूँगा और तुम्हारे हर एक काम में यथासाध्य सहायता दूँगा ।

कुछ देर तक रघुपति का आशय राजा की समझ में न आया । उन्होंने एक बार मन में सोचा—रघुपति पागल तो नहीं हो गया है ?

राजा ने उसकी बात का कुछ जवाब न दिया ।

रघुपति—मैं सब देख चुका, सुख किसी में नहीं है । हिंसा में सुख नहीं, राग-द्वेष में सुख नहीं और प्रभुता पाने पर भी सुख नहीं है । आपने जिस मार्ग का अवलम्बन किया है उसी मे सुख है । मैंने आपके साथ बड़ी शत्रुता की, आपके जी को दुखाया । हाय ! मैं आपको अपने आगे बलि देना चाहता था । आज मैं आपके पास अपने को सम्पूर्णरूप से समर्पण करने आया हूँ ।

गोविन्दमाणिक्य—आपने मेरा बड़ा ही उपकार किया ।

मेरे शत्रु छाया की तरह मेरे साथ लगे फिरते थे। आपने मुझे उनके पञ्जे से बचा लिया।

रघुपति ने इस बात पर विशेष ध्यान न देकर कहा—महाराज, मैं इतने दिनों से प्राणियों का रक्तपात करके जिस पिशाचिनी (हिंसा) की सेवा करता रहा हूँ वह अब मेरे ही हृदय का रक्त सोखने लगी है। लोहू की प्यासी उस जड़ता मूर्खता को छोड कर मैं आपके पास यहाँ आया हूँ। वह अब महाराज के राज्य में, देव-मन्दिरों मे, नहीं है। अब वह राज दरबार में प्रवेश करके सिहासन पर चढ बैठी है।

राजा—देवमन्दिरों से जब वह दूर होगई है तब धीरे धीरे मनुष्यो के हृदय से भी दूर हो जायगी।

पीछे से परिचित स्वर में यह सुन पडा—नहीं महाराज, मनुष्यों के ही हृदय यथार्थ मन्दिर हैं। उसी जगह तलवार पर सान चढाई जाती है और उसी जगह शत सहस्र मनुष्यों की हिंसा होती है। देवमन्दिर में तो उसका एक साधारण अभिनय-मात्र होता है।

राजा ने अचम्भे के साथ पीछे की ओर घूम कर देखा तो हँसते हुए प्रसन्नमूर्ति बिल्वन खडे हैं। राजा ने उन्हें प्रणाम करके रुद्ध-स्वर में कहा—आज मेरे आनन्द की सीमा नहीं है।

बिल्वन ने कहा—महाराज ने अपने अन्त करण को जीत कर मानो सारे ससार को जीत लिया है। इसी से आज आपके द्वार पर शत्रु-मित्र सभी आकर समान भाव से खडे हुए हैं।

फ़कीर कुछ आगे बढ़ कर बोला—महाराज, मैं भी तुम्हारा एक बड़ा दुश्मन हूँ, मैं भी आज अपने को तुम्हारे हाथ अर्पित करता हूँ। उसने रघुपति की ओर अँगुली उठा कर कहा—यह ब्राह्मण मुझे पहचानता है। मैं ही शुजा हूँ। बङ्गाले का नवाब मैं ही हूँ। मैंने ही तुमको निरपराध निर्वासित किया और उस पाप का उचित दण्ड पाया। मेरे भाई की हिंसा पिशाचिनी, मेरे रुधिर की प्यासी होकर, आज गली गली मेरे पीछे लगी फिरती है। अपने राज्य में मुझे पाँव रखने को भी कहीं जगह नहीं। मैं अब वेष बदल कर नहीं रह सकता। मैं तुम्हारे पास अपने को समर्पित कर तुमसे रक्षा चाहता हूँ।

राजा ने नवाब को अपने गले से लगाया और कहा—आज मेरे सौभाग्य का क्या कहना है।

रघुपति—महाराज, आपके साथ शत्रुता करने मे भी लाभ है। मैं आपके साथ शत्रुता करने जा कर ही आज आपके पास आगिरा हूँ। नहीं तो किसी समय भी आपको थोड़े ही पा सकता।

बिल्वन ने हँस कर कहा—ठीक है, फन्दे में फँस कर अगर कोई फन्दे से निकल भागने की चेष्टा करे तो उसका गला और भी फँस जाता है।

रघुपति—मैं अब निर्द्वन्द्व हो गया। मुझे अब कोई दुःख नहीं। मुझे अब शान्ति मिल गई।

विल्वन—शान्ति-सुख तो अपने हृदय के भीतर ही है। लोग उसे ढूँढते नहीं। भगवान् ने मानों मिट्टी के वर्तन में यह अमृत भर रक्खा है। परन्तु किसी को विश्वास नहीं कि यह अमृत है। धक्का लग कर जब बर्तन फूटता है तब बहुत दिन बाद कहीं अमृत का स्वाद मिलता है। हाँ, ऐसी अनूठी चीज कहीं ऐसे पात्र में रक्खी जाती है।

इसी समय हुल्लड मचाते हुए कितने ही छोटे बडे लडके किले के अन्दर आ पहुँचे। राजा ने बिल्वन ठाकुर से कहा—"स्वामीजी, देखिए, ये सभी मेरे ध्रुव हैं।" उन्होंने लडकों की ओर अँगुली उठाई।

विल्वन ने कहा—"जिस एक ध्रुव की बदौलत तुम्हें इतने ध्रुव मिले हैं, वह तुम्हें भूला नहीं। मैं अभी उसे लाये देता हूँ।" यह कह कर वे बाहर गये और कुछ देर बाद ध्रुव को गोद मे लिये हुए लौट आये। उन्होंने राजा की गोद में ध्रुव को रख दिया। राजा ने उसको छाती से लगा कर कहा—ध्रुव।

ध्रुव कुछ न बोला। वह चुपचाप राजा के कन्धे पर सिर रख कर रह गया। बहुत दिनों के बाद भेंट होने पर शायद उस बालक के छोटे से हृदय में कुछ ग्लानि और सकोच सा हो आया। उसने राजा के गले से लिपट कर अपना मुँह छिपा लिया।

राजा ने कहा—और तो सब हुआ, सिर्फ नक्षत्र ने मुझे एक बार भाई कह कर न पुकारा।

शुजा ने बडी फुरती से कहा—महाराज, और लोग भाई की तरह भले ही व्यवहार करें पर सगा भाई भाई का सा व्यवहार नहीं करता ।

शुजा के हृदय में अब भी भाई का व्यवहार बरछी की तरह चुभ रहा है ।

उपसंहार

इस जगह इतना जान लेना आवश्यक है कि वे तीनों लडके, जो पुरुष के वेष मे थे, शुजा की तीनो लडकियाँ थीं । मक्का जाने के इरादे से शुजा चटगाँव के बन्दर गये थे, किन्तु उनके अभाग्य से अधिक वर्षा होने के कारण एक भी जहाज उन्हें न मिला । आखिर हताश होकर वहाँ से लौटते समय रास्ते में गोविन्दमाणिक्य के साथ किले के अन्दर उनकी भेंट हुई । शुजा कुछ दिन उसी किले में रहे । अन्त मे फिर उन्हे खबर मिली कि बादशाह की सेना मेरी तलाश मे घूम रही है । तब गोविन्दमाणिक्य ने सवारी आदि का बन्दोबस्त करके अधिक नौकरो के साथ उन्हें सम्मानपूर्वक अपने मित्र अराकान के राजा के पास भेज दिया । शुजा ने चलते वक्त गोविन्दमाणिक्य को अपनी एक बहुमूल्य तलवार उपहारस्वरूप दी ।

इस बीच में र[illegible] और बिल्वन के साथ मिल कर राजा

सारे गाँव के लोगो को अच्छे रास्ते पर ले आये। राजा का वह किला मानों सारी बस्ती का प्राण हो उठा।

इस प्रकार छः वर्ष बीत जाने पर छत्रमाणिक्य की मृत्यु हुई। गोविन्दमाणिक्य को फिर सिंहासन पर बैठाने के हेतु त्रिपुरा से दूत आये। उन्होंने यही कहा कि—मैं अब अपने देश को लौट कर न जाऊँगा।

विल्वन ने समझा कर कहा—महाराज, ऐसा न कीजिए। जब धर्म स्वय दरवाजे पर आकर पुकार रहा है तब उसका अनादर करना उचित नहीं।

राजा ने अपने विद्यार्थियों की ओर देख कर कहा—मेरी इतने दिनो की आशा और इतने दिनो का काम अधूरा ही रहेगा।

विल्वन—"आपका काम मैं पूरा करूँगा।" राजा ने कहा—आप यदि यहाँ रहेंगे तो मरे वहाँ का काम आपके बिना पूरा न होगा।

विल्वन—अब आपको मेरी कोई आवश्यकता नहीं। अब अपने काम को आप बखूबी सँभाल सकते हैं। मैं कभी कभी आपसे मिलता रहूँगा।

ध्रुव को लेकर राजा अपने राज्य में गये। ध्रुव अब वैसा बालक नहीं है। उसने विल्वन की कृपा से संस्कृत भाषा सीख कर शास्त्र पढने में मन लगाया है। रघुपति ने फिर अपनी पुरोहिती ग्रहण की। इस बार मन्दिर में आकर मानो उसने मृत जयसिंह को जीवित दशा में पाया।

इधर अराकान के राजा ने शुजा के साथ विश्वासघात किया। उसने शुजा को मार कर उसकी छोटी लड़की से ब्याह कर लिया। अभागे शुजा के ऊपर अराकान के राजा की निर्दयता का वृत्तान्त सुन कर गोविन्दमाणिक्य बहुत दुखी हुए। शुजा के नाम को चिरस्मरणीय करने के लिए उन्होंने उस उपहार-स्वरूप तलवार के बदले बहुत धन खर्च करके कुमिल्ला शहर में एक बड़ी ही मनोहर मसजिद बनवा दी। उक्त स्थान में शुजा मसजिद के नाम से वह अब भी मौजूद है।

गोविन्दमाणिक्य के प्रयत्न से कितने ही नए गाँव-नगर बस गये। उन्होंने अच्छे अच्छे विद्वान् ब्राह्मणों को बहुत सी जमीन, ताम्रपत्र पर सनद लिख कर, दान कर दी। महाराज गोविन्द-माणिक्य ने कुमिल्ला के दक्खिन बातिसा गाँव में एक बहुत बड़ा तालाब खुदवाया। उन्होंने और भी कितने ही अच्छे अच्छे कामों में हाथ लगाया पर उन्हें सम्पन्न न कर सके। वे १६६६ ईसवी में इस संसार को त्याग कर सुरपुर चले गये।

समाप्त

— ० —

शेष दो अनुच्छेद (पाराग्राफ) श्रीयुत बाबू कैलासचन्द्रसिंह प्रणीत त्रिपुरा के इतिहास से उद्धृत हुए हैं।